विशेषांक

परिवार अंक

UPBIL 04831

मूल्य ₹100

संस्कृतिपर्व

संस्कृति, साहित्य, अध्यात्म और जीवन दर्शन की मासिक द्विभाषी पत्रिका

sanskritiparva

सबका साथ–सबका विकास–सबका विश्वास

सोशल आडिट के बढ़ते कदम

समाज के सभी वर्गों को भारत सरकार/राज्य सरकार की योजनाओं के क्रियान्वयन में पारदर्शिता, जनसहभागिता एवं जवाबदेही सुनिश्चित करने के लिए उत्तर प्रदेश सरकार द्वारा उठाये गए महत्वपूर्ण कदम।

सोशल आडिट क्यों?

- ग्राम पंचायतों और अन्य कार्यदायी संस्थाओं के कार्यों में पारदर्शिता, जन–सहभागिता एवं जवाबदेही सुनिश्चित कराने के लिए।
- लेखों की जॉच के साथ कार्यों का भौतिक सत्यापन, समाज की सहभागिता और निगरानी में।
- योजनाओं का लाभ समाज के सभी वर्गों को प्राप्त कराने के लिए।
- योजनाओं में जन–सामान्य को उनके हक, अधिकार एवं कर्तव्य के बारे में जागरूकता।

जन जागरूकता के लिये किए गए प्रयास

जन–जागरूकता रैली, सभी विकास भवनों पर होर्डिंग लगाकर, स्कूली बच्चों को जागरूकता रैली में सम्मिलित कर, स्कूटर मोटर–साइकिल रैली, लोकगीतों के माध्यम से तथा पम्पलेट्स बाँट कर एवं सोशल आडिट बैठक के पूर्व माइक द्वारा सूचना देकर आम–जन को सोशल आडिट जैसी पारदर्शी प्रक्रिया से जोड़ा गया, जिससे सोशल आडिट की बैठक में जनमानस की सहभागिता बढ़ी।

टेस्ट आडिट

सोशल आडिट की गुणवत्ता बनाये रखने के लिये निदेशालय द्वारा टेस्ट आडिट करायी जाती है।

अब तक की प्रगति

- वर्ष 2018–19 में 20,887 ग्राम पंचायतों की सोशल आडिट करायी गयी।
- वर्ष 2019–20 में माह सितम्बर, 2019 तक 16 हजार से अधिक ग्राम पंचायतों में सोशल आडिट करायी गयी।
- 31 मार्च 2020 तक प्रदेश की सभी ग्राम पंचायतों में सोशल आडिट कराने का लक्ष्य है।

क्या हासिल किया

सोशल आडिट के द्वारा जन सामान्य **'मेरा काम मेरा दाम' 'मेरा पैसा मेरा हिसाब'** जैसे स्लोगन से अपनी आवाज उठाने में सफल हुआ। मनरेगा–प्रधानमंत्री आवास योजना जैसी योजनाओं से ग्रामवासियों के जीवन स्तर में गुणात्मक परिवर्तन आया तथा अपनी बात रखने का एक जनतांत्रिक मंच प्राप्त हुआ है।

जन सामान्य से अपील

सोशल आडिट एक सतत प्रक्रिया है। निदेशालय की वेबसाइट **http://socialauditup.in** पर उपलब्ध कैलेण्डर के अनुसार अपनी–अपनी ग्राम पंचायतों के सोशल आडिट ग्राम सभा की बैठक में सक्रिय भागीदारी कर जवाबदेही सुनिश्चित करने में योगदान करें और सोशल आडिट को और अधिक जनोपयोगी बनायें।

राजेन्द्र प्रताप सिंह (मोती सिंह)

मंत्री, ग्राम्य विकास विभाग, उत्तर प्रदेश

सोशल आडिट निदेशालय, उत्तर प्रदेश–ग्राम्य विकास विभाग, उत्तर प्रदेश द्वारा जनहित में जारी।

सनातन संस्कृति के महापर्व

मकर संक्रांति

की

हार्दिक शुभकामनाएं

भारत संस्कृति न्यास एवं संस्कृति पर्व परिवार

अनुक्रमणिका

क्रम संख्या	शीर्षक	लेखक	पृष्ठ सं०
01	मानव सभ्यता की अनूठी पहचान है परिवार	ललित गर्ग	12
02	एकत्व की भावना से मूर्त होगी विश्व परिवार की अवधारणा	श्रेया झा	16
03	भाषा विज्ञान की छतरी में परिवार	कमलेश कमल	18
04	परिवार का बदलता स्वरूप, बच्चों का छिनता बचपन	डॉ० अजय ओझा	20
05	साहचर्य जनित प्रेम ही भारतीय परिवार का मेरुरज्जु	दीप्ति झा	24
06	परिवार की महत्ता	उषा लक्ष्मी शर्मा	26
07	समन्वय और संरक्षण का नाम परिवार	डॉ० अर्पण जैन 'अविचल'	28
08	प्रेम ही है परिवार का पर्याय	प्रणीता सिंह	30
09	भारीतय परिवार का ढांचा कभी बुलंदी को छूएगा	रतन मालवीय	32
10	नारी है परिवार की धुरी	रश्मि मालवीय	34
11	परिवार और सोलह संस्कार	डॉ० लालमणि तिवारी	36
12	सृष्टि में इस सौरमंडल के सृजन का एक पड़ाव	संजय तिवारी	44
13	परिवार का महत्व और बदलता स्वरूप	देवेन्द्रराज सुथार	54
14	स्वस्थ्य जीवन के लिये जरूरी है ब्रह्म मुहूर्त में उठ जाना	डॉ० सरोज तिवारी	56
15	सशक्त मातृत्व से ही बनेगा समर्थ राष्ट्र	डॉ० अर्चना तिवारी	59
16	सुनो, मुस्करा दो ना	नेहा अग्रवाल 'नेह'	62
17	संस्कृति पर्व के सहयोगियों का सम्मान		64
18	कविता – बेटियों भार नहीं होतीं	डॉ० ममता त्रिपाठी	66
19	English poems	Dr. Ram Sharma	67

पाठकों से

संस्कृति पर्व का कार्तिक विशेष अंक आपके हाथों में है। इस अंक के लिये चित्रों का संकलन गूगल से किया गया है। जिसके लिए हम उन सभी छायाकारों के प्रति कृतज्ञ हैं। इस अंक मे संभव है कि संपादन अथवा संयोजन में कुछ त्रुटियां रह गयी हों इसलीए हम अपने सुधी पाठकों से अपेक्षा करते हैं कि वे त्रुटियों को नजरअंदाज करेंगें। यह अंक आपको कैसा लगा इस बारे में हमें अपने विचारों से अवश्य अवगत कराईएगा। सनातन संस्कृति के संरक्षण और संवर्धन में आपका योगदान अत्यंत मूल्यवान है। – सम्पादक

प्रेरणा
परम पूज्य स्वामी अखण्डानंद जी महाराज
संत साहित्य मर्मज्ञ आचार्य परशुराम चतुर्वेदी
ब्रह्मर्षि रेवती रमण पाण्डेय

संस्कृति पर्व
Sanskriti Parva

वर्ष-2 अंक-12

जनवरी-2020

संरक्षक मंडल
स्वामी जीतेन्द्रानंद सरस्वती जी
(महामंत्री, अखिल भारतीय संत समिति एवं गंगा महासभा)
जगद्गुरु स्वामी राघवाचार्य जी (अयोध्या)

विद्वत परिषद
प्रो० सभाजीत मिश्र
(पूर्व अध्यक्ष, दर्शनशास्त्र विभाग, गोरखपुर विश्वविद्यालय)
प्रो० दयानाथ त्रिपाठी
(पूर्व अध्यक्ष, आईसीएचआर, नई दिल्ली)
डॉ० अरुणेश नीरन
(अंतरराष्ट्रीय अध्यक्ष, विश्व भोजपुरी सम्मेलन)
प्रो० रामदेव शुक्ल
(पूर्व अध्यक्ष, हिन्दी विभाग, गो०वि०वि०)
प्रो० माता प्रसाद त्रिपाठी
(पूर्व अध्यक्ष, प्राचीन इतिहास विभाग, गो०वि०वि०)
प्रो० नन्द किशोर पाण्डेय
(अध्यक्ष, केन्द्रीय हिन्दी संस्थान, आगरा)
प्रो० सदानंद गुप्त
(कार्यकारी अध्यक्ष, उत्तर प्रदेश हिन्दी संस्थान, लखनऊ)
प्रो० अजित के चतुर्वेदी
(निदेशक, आईआईटी रुड़की)
प्रो० सुरेन्द्र दुबे
(कुलपति, सिद्धार्थ विश्वविद्यालय, कपिलवस्तु, सिद्धार्थनगर)
प्रो० राजेन्द्र प्रसाद
(कुलपति, मगध विश्वविद्यालय, गया, बिहार)
श्री प्रफुल्ल केतकर
(सम्पादक, ऑर्गनाइजर)
श्री कृष्णकांत उपाध्याय
(सम्पादक, हिन्दुस्तान, बिहार/झारखंड)
प्रो० चितरंजन मिश्र
(पूर्व अध्यक्ष हिन्दी विभाग, गोरखपुर विश्वविद्यालय, गोरखपुर)
प्रो० जीतेन्द्र मिश्र
(अधिष्ठाता, विधि संकाय, दी.द.उ. गो.वि.वि)
प्रो० हिमांशु चतुर्वेदी
(पूर्व अध्यक्ष, इतिहास विभाग, गो०वि०वि०)
प्रो० राजेन्द्र सिंह
(पूर्व प्रतिकुलपति, गोरखपुर विश्वविद्यालय, गोरखपुर)
श्री अजीत दुबे
(अध्यक्ष, विश्व भोजपुरी सम्मेलन एवं सदस्य साहित्य अकादमी, नई दिल्ली)
डॉ० मृणालिनी चतुर्वेदी
(अध्यक्ष, क्रोयोबैंक इंटरनेशनल, नई दिल्ली)
डॉ० नरेश अग्रवाल
(वरिष्ठ बाल रोग विशेषज्ञ, गोरखपुर)
डॉ० आर. सी. श्रीवास्तव
(अवकाशप्राप्त आई.ए.एस)
राकेश त्रिपाठी
(आई. आर. एस.)
डॉ० योगेश मिश्र
(समूह सम्पादक, अपना भारत/न्यूज ट्रेक, लखनऊ)
श्री मंकेश्वरनाथ पाण्डेय
(सचिव, नेशनल एजुकेशनल सोसाईटी, गोरखपुर)
डॉ० रविकांत तिवारी
(अमेरिका)

सलाहकार परिषद
श्री अजय उपाध्याय
(वरिष्ठ पत्रकार, नई दिल्ली)
डॉ० संजय द्विवेदी
(माखनलाल चतुर्वेदी राष्ट्रीय पत्रकारिता विश्वविद्यालय, भोपाल)
श्री सुजीत कुमार पाण्डेय
(वरिष्ठ पत्रकार, गोरखपुर)
डॉ० मुन्ना तिवारी
(बुन्देलखण्ड वि०वि० झांसी)
डॉ० ममता त्रिपाठी
(दिल्ली वि०वि०)
श्री सुनील जैन
(एडवोकेट, इलाहाबा)
डॉ० वैभव गुप्त
(वरिश्ठ चिकित्सक, झांसी)
आचार्य सोमदत्त द्विवेदी
(वाराणसी)
डॉ० संजयन त्रिपाठी
(अध्यक्ष, नवल्स शिक्षा समूह, गोरखपुर)
श्री हेमंत मिश्र
(निदेशक, एबीसी शिक्षा समूह)
श्री अजय शाही
(निदेशक, आरपीएम शिक्षा समूह)
डॉ० गजेन्द्रनाथ मिश्र
(निदेशक, आर.सी. मेमोरियल शिक्षा समूह)
श्री अरुण्कांत त्रिपाठी
(सम्पादक, कमलज्योति, लखनऊ)
डॉ० राजीव तिवारी
(वरिष्ठ चिकित्सक, नई दिल्ली)
श्री गजेन्द्र प्रियांशु
(कवि एवं साहित्यकार, लखनऊ)
डॉ० गौरी मिश्रा
(कवियित्री, नैनीतालद)
डॉ० मनोज कुमार श्रीवास्तव
(चिकित्सक एवं लेखक, वाराणसी)
योगगुरु पुश्पांजलि शर्मा
(योगसूत्र स्टूडियो, वाराणसी)
डॉ० वाई के मद्धेशिया
(वरिष्ठ चिकित्सक, कुशीनगर)
श्री दीप्तभानु डे
(वरिष्ठ पत्रकार, गोरखपुर)
श्री रतिभान त्रिपाठी
(वरिष्ठ पत्रकार, लखनऊ)
हसन अब्बास रिज़वी
(वरिष्ठ मीडियाकर्मी एवं लेखक)
श्री पुरुषोत्तम तिवारी
(वरिष्ठ पत्रकार, कोलकाता)
श्री अनुपम सहाय
(वरिष्ठ अधिकारी, पीएनबी)
श्री मनोज साहू
(लखनऊ)
डॉ० राम शर्मा
(शिक्षाविद्, मेरठ)

सम्पादकीय संरक्षक
आचार्य विश्वनाथ प्रसाद तिवारी
(पूर्व अध्यक्ष, साहित्य अकादमी, नई दिल्ली)

प्रबंध सम्पादक
बी के मिश्र

सम्पादक
संजय तिवारी

कार्यकारी सम्पादक
डॉ० अर्चना तिवारी

सह-सम्पादक
डॉ० प्रदीप राव
डॉ० अनिता अग्रवाल
डॉ० दिनेशमणि त्रिपाठी
कमलेश कमल
आमोदकांत मिश्र

समन्वय सम्पादक
अवनीश पी. एन. शर्मा

सम्पादकीय सलाहकार
मनोज कुमार त्रिपाठी

सम्पादक विचार
पुष्कर अवस्थी

लेआउट, ग्राफिक्स एवं डिजाइन
संजय मानव

सम्पादकीय परिषद
शारदा सुमन (नई दिल्ली)
डॉ० किरन लता मिश्र (गोरखपुर)
डॉ० अजय ओझा (राँची)
आचार्य शिवदत्त द्विवेदी (वाराणसी)
दिवाकर शर्मा (शिवपुरी, मध्यप्रदेश)
प्रो० भारती गोरे (महाराष्ट्र)
नीलम दीक्षित (मुम्बई)
ज्योतिर्विद् डॉ० अरविन्द त्रिपाठी (नई दिल्ली)

विशेष सम्पादकीय परामर्श
आचार्य लालमणि तिवारी
(गीता प्रेस, गोरखपुर)
श्री रसेन्दु फोगला
(गीता वाटिका, गोरखपुर)

विधि सलाहकार
श्री अमिताभ चतुर्वेदी
(वरिष्ठ अधिवक्ता, नई दिल्ली)
श्री असित के. चतुर्वेदी
(वरिष्ठ अधिवक्ता, लखनऊ)
श्री अशोक नारायण धर दूबे
(वरिष्ठ अधिवक्ता, लखनऊ)

लेखा परीक्षक
अरुण गुप्ता
सूचना तकनीक एवं प्रबंधन
उत्कर्ष तिवारी
क्रिएटिव
प्रकर्ष तिवारी
(shot by Inflict)

स्वामी, मुद्रक एवं प्रकाशक संजय तिवारी द्वारा स्वास्तिक ग्रफिक्स, महागनगर, लखनऊ उ०प्र० से मुद्रित एंव बी–64, आवास विकास कॉलोनी, सूरजकुण्ड, गोरखपुर, उ०प्र० से प्रकाशित

पत्रिका में प्रकाशित सामग्री के लिए संबंधित लेखक उत्तरदायी होगा। किसी भी प्रकार के न्यायिक विवाद का क्षेत्र गोरखपुर जिला न्यायालय के अधीन होगा।

पंजीकृत कार्यालय : बी-64, आवास विकास कालोनी, सूरजकुंड, गोरखपुर-273001
लखनऊ कार्यालय : 2/43, विजय खण्ड, गोमती नगर, लखनऊ-226010
दिल्ली कार्यालय : बी-38 डिफेन्स कॉलोनी, नई दिल्ली-110024
सम्पर्क - : + 91 94508 87186-87

Mail us - editor.sanskritiparva@gmail.com
Website - www.bharatsanskritinyas.org
Follow us

आशीर्वाद

संस्कृति पर्व की परिवार जैसे विषय की अवधारणा अद्भुत है। आज विश्व के समक्ष आसन्न अनेक संकटों का समाधान इस विषय में निहित है। इस विषय के चयन और निर्धारण के लिए संस्कृति पर्व की सम्पादकीय परिषद् को हार्दिक बधाई भी और कोटिशः आशीर्वाद भी। वास्तव में भारत में परिवार की अवधारणा के साथ ही राष्ट्र , समाज और विश्व की उन्नति एवं विकास की अवधारणा भी समाहित है। भारत की यही शक्ति रही माध्यम से अनेक आक्रमणों को पार निरंतर संघर्ष कराती भारतीयता को वास्तविक शक्ति मिलती रही है। भारतीय समाज में शक्ति के वास्तविक केंद्र परिवार ही हैं। यदि आधुनिक कथित आंधी में उड़ रहा हमारा समाज इसको ठीक से नहीं समझ पा रहा तो यह सामयिक माध्यमों का ही दायित्व है कि वे समय से समाज को इस शक्ति की सामर्थ्य से अवगत कराएं। इसको ठीक वैसे ही समझा जा सकता है जैसे भारतीय स्वाधीनता संग्राम के ठीक उत्कर्ष के समय भाई जी हनुमान प्रसाद पोद्दार ने गीता प्रेस , गोरखपुर से कल्याण का प्रकाशन और सम्पादन कर के भारत की सनातन शक्ति के दुर्लभ वांग्मय को सुरक्षित, संरक्षित एवं प्रकाशित कर उसे जनता तक प्रसारित करने का कार्य प्रारम्भ कर दिया जिसका परिणाम हुआ कि आजादी के बाद राजनीती तो अपने काम में जुट गयी लेकिन भाई जी के कारण सनातन साहित्य और शास्त्र काफी हद तक सुरक्षित हो कर समाज का मार्गदर्शन करते रहे। सनातन भारत के निर्माण का यह बड़ा कार्य था।

मुझे यह लिखने में बिलकुल संकोच नहीं है कि जिस कार्य को भाई जी ने गीताप्रेस के माध्यम से प्रारम्भ किया था , आज भारत संस्कृति न्यास और इसकी पत्रिका संस्कृति पर्व के माध्यम से संजय तिवारी और उनकी सम्पादकीय परिषद् उसी को आधुनिक माध्यम और तरीके से आगे बढ़ा रही है। नए भारत के नवनिर्माण के साथ संस्कृति और संस्कारो की यह यात्रा बहुत ही महत्वपूर्ण है। इस सारस्वत कार्य के लिए संस्कृति पर्व के संपादक संजय तिवारी और उनकी सहयोगी परिषद् को बहुत बहुत बधाई , आशीर्वाद।

नारायण

स्वामी जीतेन्द्रानंद सरस्वती

महामंत्री , अखिल भारतीय संत समिति

महामंत्री गंगा महासभा , काशी

परिवार भारतीय समाज की धुरी है। इसी धुरी पर भारतीय संस्कृति और भारतीय समाज निरंतर आगे की यात्रा करता है। परिवार में ही व्यक्ति के विकास की संभावनाएं भी निहित हैं। व्यक्ति के विकास की प्राथमिक पाठशाला उसका कुल और परिवार ही होता है। इसी से मिले संस्कारों को लेकर एक अबोध बालक आगे चल कर खुद को समग्र व्यक्तित्व के रूप में विकसित करता है। परिवार ऐसी आधारशिला है जो बच्चे को एक समग्र नागरिक बनने तक निरन्तर क्रियाशील रहती है। परिवार की शक्ति, उसके सामर्थ्य और उकसी संवेदना से मनुष्य को देश और समाज के लिए कुछ करने की सीख मिलती है। ऐसे में परिवार को लेकर चिंतन और इस संथा का समग्र विश्लेषण भी बहुत आवश्यक है। आज देश और समाज में जो समस्याएं हैं उनमे से अधिकाँश ऐसी हैं जिनका समाधान परिवार की शक्ति और उसके सामर्थ्य से बहुत सम्भव है लेकिन यह पीड़ादायक है कि आधुनिकता की दौड़ में हम कही न कही परिवार को बहुत कमजोर और निष्प्राण बनाते चले जा रहे हैं। यह केवल भारत के लिए ही नहीं बल्कि विश्व की शान्ति के प्रयासों के लिए एक बाधा जैसा है।

मुझे बेहद सुखद अनुभूति हो रही है कि संस्कृति पर्व की सम्पादकीय परिषद् ने परिवार जैसे महत्वपूर्ण विषय को अपने नए अंक के लिए निर्धारित किया है। यह अंक निश्चय ही भारतीय समाज को दिशा देने वाला बन सकेगा। यह एक ऐसा विषय है जिस पर आज देश में बहुत अल्प ही लिखा जा रहा है। ऐसे समय में संस्कृति पर्व की यह प्रस्तुति पाठकों के लिए अत्यंत महत्वपूर्ण साबित होगी।

(बी के मिश्र)

सशक्त परिवार, शक्तिशाली राष्ट्र

संजय तिवारी

देश में आज जो कुछ दिख रहा है उसके केंद्र में परिवार है। अब वह बेजार हो चुका है। संस्कारों, मूल्यों और संवेदनाओं का क्षरण हुआ है , यह साफ़ साफ़ दिख रहा है। यदि ऐसा न होता देश में मूल्यहीनता, असंवेदना और राष्ट्रद्रोह जैसे कृत्य में इतनी अधिक संलग्नता नहीं दिखती। देश में इतना जहर फैलाने वाले लोग भी आखिर इसी देश के किसी परिवार में जन्म लिए होंगे न। फिर उनमे अपने ही समाज, समुदाय और राष्ट्र के प्रति इतनी नफरत कहाँ से आ गयी। देश को बांटने और बेचैन करने के सपने उन्हें किन माध्यमों से दिखाए जा रहे हैं। यदि देश के कुछ विश्वविद्यालयों में पढ़ने वाले विद्यार्थी आज देश को टुकड़े करने की बात कर रहे हैं तो भारत के किन परिवारों में वे पले और बढे हैं ?आखिर वे कैसे परिवार हैं जिन्हे अपने ऐसे बच्चों को लेकर कोई चिंता ही नहीं जो देश विरोध की इस सीमा तक जा रहे हैं ?जिस तरह के चित्र और वीडिओ परिसर से आ रहे हैं उनमे दिखने वाले लडके लडकियां आखिर भारत के किन परिवारों से हैं ? ऐसे अनगिनत प्रश्न हैं जो अपने उत्तर की तलाश चाहते हैं। देश में इस उत्तर की तलाश की बजाय अनाप शनाप के तर्क प्रस्तुत किये जा रहे हैं। यकीनन यदि यह सब दिख रहा है तो इसलिए क्योकि देश में इस समय ऐसा वातावरण बना दिया गया जिसमे परिवार का जैसे अस्तित्व ही समाप्त सा हो गया है और सारा तना बाना बिखर सा गया है। ऐसे परिवेश में हमें यह लगा कि परिवार को केंद्रित कर एक अंक अवश्य निकालना चाहिए। यद्यपि यह एक गिलहरी प्रयास है लेकिन बहुत गंभीर है।

अब बात करते हैं परिवार की। सनातन की अवधारणा है वसुधैव कुटुम्बकम। मतलब पूरी पृथ्वी ही एक परिवार है और इस पृथ्वी पर रहने वाले सभी मनुष्य और जीव-जन्तु एक ही परिवार का हिस्सा हैं। यद्यपि यह एक प्राचीन अवधारणा है, किन्तु आज यह पहले से भी अधिक प्रासंगिक है। किसी भी समाज की सबसे प्रथम कड़ी होता है- परिवार। परिवार लोगों के एक ऐसे समूह का नाम है, जो विभिन्न रिश्ते-नातों के कारण भावनात्मक रूप से एक-दूसरे से जुड़े रहते हैं। ऐसा नहीं है कि उनमें कभी लड़ाई-झगड़ा नहीं होता या वैचारिक मतभेद नहीं होते, परन्तु इन सबके बावजूद एक-दूसरे के दुख-सुख के साथी होते हैं। इसी अपनेपन की प्रबल भावना होने के कारण परिवार सभी लोगों की पहली प्राथमिकता होता है। एक परिवार के सदस्य एक-दूसरे को पीछे धकेलकर नहीं वरन् एक-दूसरे का सहारा बनते हुए आगे बढ़ते हैं। परिवार के इसी रूप को जब वैश्विक स्तर पर निर्मित किया जाए, तो वह 'वसुधैव कुटुम्बकम्' कहलाता है। वस्तुतः परिवार ही किसी भी व्यक्ति की आधारभूत शक्ति है जिसके साथ व्यक्ति को समाज , राष्ट्र एवं विश्व को कल्याणपथ पर ले जाने की प्रेरणा भी मिलती है और वह इस दिशा में कुछ कर पाता है। मनुष्य इस धरती पर उच्चतम विकास करने वाली जाति है। बौद्धिक रूप से वह अन्य सभी जीवों से श्रेष्ठ है। अपनी इसी बौद्धिक क्षमता के कारण यह पूरी पृथ्वी का स्वामी है और पृथ्वी के अधिकांश भू-भाग पर उसका निवास है। यद्यपि शारीरिक बनावट के आधार पर सभी मनुष्य एक-जैसे हैं, उनकी आवश्यकताएँ भी लगभग एक जैसी ही हैं, अलग-अलग स्थानों पर रहने के बावजूद उनकी भावनाओं में भी काफ़ी हद तक समानता है।

भारत के सन्दर्भ में जब परिवार की बात की जा रही है तो यहाँ परिवार एक ऐसी प्रयोगशाला के रूप में दिखता है जिसमे जन्म लेने वाले व्यक्ति के निर्माण की समग्र समिधाएं विद्यमान होती

हैं। व्यक्ति के विकास के साथ उसकी प्राथमिक शिक्षा , संस्कार , जीवन के मूल्य , मर्यादाओं का ज्ञान और व्यक्ति के रूप में उसकी भूमिका की असली सीख परिवार से ही मिलती रही है। आज यह विषय इसी लिए महत्वपूर्ण होकर उभर रहा है क्योकि भारत के परिवार का ढांचा और उसके कार्य बहुत तेजी से बदल रहे हैं जिसका सीधा प्रभाव मनुष्य के व्यक्तित्व पर दिख रहा है। भावनाओ , संवेदनाओं और मानवीय मूल्यों में तेजी से हो रहे क्षरण के मूल में निश्चय ही परिवार जैसी शक्तिशाली संस्था पर हो रहा आघात एक बहुत बड़ा कारण है। इस पूरी अवधारणा को थोड़े से सूक्ष्म विश्लेषण के साथ समझने की आवश्यकता है।

सभी संसाधनों और सम्यक विचारों के बावजूद मनुष्य बँटा हुआ है और इसी कारण उसने भू-खड्डों को भी बाँट लिया है। पृथ्वी महाद्वीपों में, महाद्वीप, देशों में और देश राज्यों में विभक्त हैं। कहने को यह धरती का विभाजन है और यह आवश्यक भी लगता है, परन्तु प्रत्येक स्तर के विभाजन के साथ ही मनुष्य की संवेदनाएँ भी घटी हैं। आज एक सामान्य व्यक्ति की प्राथमिकता का क्रम परिवार, मोहल्ले से शुरू होता है और अधिकतम उसका अन्त देश या राष्ट्र पर हो जाता है। देखा जाए तो आधुनिक समय में 'वसुधैव कुटुम्बकम्' ग्रन्थों-पुराणों में वर्णित एक अवधारणा बनकर रह गई है। मूलतः वसुधैव कुटुम्बकम की संकल्पना भारतवर्ष के प्राचीन ऋषिमुनियों द्वारा की गई थी, जिसका उद्देश्य था – पृथ्वी पर मानवता का विकास। इसके माध्यम से उन्होंने यह सन्देश दिया कि सभी मनुष्य समान हैं। सभी का कर्तव्य है कि वे परस्पर एक-दूसरे के विकास में सहायक बनें, जिससे मानवता फलती-फूलती रहे। भारतवासियों ने इसे सहर्ष अपनाया और इसी अवधारणा ने भारत की सनातन संस्कृति में परिवार जैसी अत्यंत शक्तिशाली संस्था स्थापित किया। यह परिवार की ही शक्ति थी जिसने दशरथ को चक्रवर्ती बना दिया। राम ने अपने समय की सबसे बड़ी आसुरी शक्ति का विनाश किया। अब से 5300 वर्ष पूर्व पांडवों के माध्यम से कृष्ण ने उस समय की सबसे बड़ी क्रांति कर अब तक का सबसे बड़ा युद्ध कर अमानवीय और मूलयहीन सभ्यता को नष्ट करने में कामयाबी पायी। विश्व को मानव परिवार स्वीकार कर लेने की भावना से ओतप्रोत होने के कारण ही, कालान्तर में भारत ने हर जाति और हर धर्म के लोगों को शरण दी और उन्हें अपनाया, लेकिन जब सोलहवीं-सत्रहवीं शताब्दी में यूरोप में औद्योगीकरण का आरम्भ हुआ और यूरोपीय देशों ने अपने उपनिवेश बनाने शुरू कर दिए, तब दुनियाभर में 'वसुधैव कुटुम्बकम्' की भावना का ह्रास हुआ तथा एक नई अवधारणा राष्ट्रवाद' का जन्म हुआ, जो राष्ट्र तक सीमित थी। इसी के कारण दुनिया दो विश्वयुद्धों का सामना करना पड़ा, जिनमें करोड़ों लोग मारे गए। आज मनुष्य धर्म, जाति, भाषा, रंगसंस्कृति आदि के नाम पर इतना बँट चुका है कि वह सभी के शान्तिपूर्ण सह-अस्तित्व के विचार को ही भूल चुका है। जगह-जगह पर हो रही हिंसा, युद्ध और वैमनस्य इसका प्रमाण हैं।

आधुनिक परिभाषा के अनुसार परिवार साधारणतया पति, पत्नी और बच्चों के समूह को कहते हैं, किंतु दुनिया के अधिकांश भागों में वह सम्मिलित निवासवाले रक्त संबंधियों का समूह है जिसमें विवाह और दत्तक प्रथा स्वीकृत व्यक्ति भी सम्मिलित हैं। प्रायः सभी समाजों में बच्चों का जन्म और पालन पोषण परिवार में होता है। बच्चों का संस्कार करने और समाज के आचार व्यवहार में उन्हें दीक्षित करने का काम मुख्य रूप से परिवार में होता है। इसके द्वारा समाज की सांस्कृतिक विरासत एक से दूसरी पीढ़ी को हस्तांतरित होती है। व्यक्ति की सामाजिक मर्यादा बहुत कुछ परिवार से ही निर्धारित होती है। सृष्टि में नर-नारी के संबंध मुख्यतः परिवार के दायरे में निबद्ध होते हैं। औद्योगिक सभ्यता से उत्पन्न जनसंकुल समाजों और नगरों को यदि छोड़ दिया जाए तो व्यक्ति का परिचय मुख्यतः उसके परिवार और कुल के आधार पर होता है। संसार के विभिन्न प्रदेशों और विभिन्न कालों में यद्यपि रचना, आकार, संबंध और कार्य की दृष्टि से परिवार के अनेक भेद हैं किंतु उसके

"एक परिवार के सदस्य एक-दूसरे को पीछे धकेलकर नहीं बरन् एक-दूसरे का सहारा बनते हुए आगे बढ़ते हैं। परिवार के इसी रूप को जब वैश्विक स्तर पर निर्मित किया जाए, तो वह 'वसुधैव कुटुम्बकम्' कहलाता है। वस्तुतः परिवार ही किसी भी व्यक्ति की आधारभूत शक्ति है जिसके साथ व्यक्ति को समाज , राष्ट्र एवं विश्व को कल्याणपथ पर ले जाने की प्रेरणा भी मिलती है और वह इस दिशा में कुछ कर पाता है।"

यह उपर्युक्त कार्य सार्वदेशिक और सार्वकालिक हैं। उसमें देश, काल, परिस्थिति और प्रथा आदि के भेद स एक या अनेक पीढ़ियों का और एक या अनेक दंपतियों अथवा पति-पत्नियों के समूहों का होना संभव है, उसके सदस्य एक पारिवारिक अनुशासन व्यवस्था के अतिरिक्त पति और पत्नी, भाई और बहन, पितामह और पौत्र, चाचा और भतीजे, सास और पुत्रवधू जैसे संबंधों तथा कर्तव्यों एवं अधिकारों से परस्पर आबद्ध, अन्य सामाजिक समूहों के संदर्भ में एक घनिष्टतम अंतरंग समूह के रूप में रहते हैं। परिवार के दायरे में स्त्री और पुरुष के बीच कार्यविभाजन भी सार्वत्रिक और सर्वकालिक है। स्त्रियों का अधिकांश समय घर में व्यतीत होता है। भोजन बनाना, बच्चों की देख रेख और घर की सफाई करना और कपड़ों की सिलाई आदि ऐसे काम हैं जो स्त्री के हिस्से में आते हैं। पुरुष बाहरी तथा अधिक श्रम के कार्य करता है, जैसे खेती, व्यापार, उद्योग, पशुचारण, शिकार और लड़ाई आदि। तब भी यह कार्यविभाजन सब समाजों में एक सा नहीं है, कोई बड़ी सामान्य सूची भी बनाना कठिन है क्योंकि कई समाजों में स्त्रियाँ भी खेती और शिकार जैसे कामों में हिस्सा लेती हैं।

भारत मुख्यतः कृषिप्रधान देश है और यहाँ की पारिवारिक रचना प्रायः कृषि की आवश्यकताओं से प्रभावित है। इसके अतिरिक्त भारतीय परिवार की मर्यादाएँ और आदर्श परंपरागत है। किसी अन्य समाज़ में गृहस्थ जीवन की इतनी पवित्रता तथा पिता–पुत्र, भाई–भाई और पति–पत्नी के इतने स्थायी संबंधों का उदाहरण नहीं मिलता। यद्यपि विभिन्न क्षेत्रों, धर्मो और जतियों में सांपत्तिक अधिकार, विवाह तथा विवाहविच्छेद आदि की प्रथा की दृष्टि से अनेक भेद पाए जाते हैं तथापि संयुक्त परिवार का आदर्श सर्वमान्य है। संयुक्त परिवार में संबंधियों का दायरा पति, पत्नी तथा उनकी अविवाहित संतानों से भी अधिक व्यापक होता है। बहुधा उसमें तीन पीढ़ियों और कभी कभी इससे भी अधिक पीढ़ियों के व्यक्ति एक घर में एक ही अनुशासन में और एक रसोईघर से संबंध रखते हुए सम्मिलित संपत्ति का उपभोग करते हैं और परिवार के धार्मिक कृत्यों तथा संस्कारों में भाग लेते हैं। यद्यपि मुसलमानों और ईसाइयों में संपत्ति के नियम भिन्न हैं, तथापि संयुक्त परिवार के आदर्श, परंपराएँ और प्रतिष्ठा के कारण इन सांपत्तिक अधिकारों का व्यावहारिक पक्ष परिवार के संयुक्त रूप के अनुकूल ही रहता है। संयुक्त परिवार का मूल भारत की कृषिप्रधान अर्थव्यवस्था के अतिरिक्त प्राचीन परंपराओं तथा आदर्श में है। रामायण और महाभारत की गाथाओं द्वारा यह आदर्श जन जन तक पहुँचते हैं। कृषि ने सर्वत्र ही पारिवारिक जीवन की स्थिरता प्रदान की है। अतः भारतीय समाज में परंपरा से उत्पादन कार्य, उपभोग और सुरक्षा की बुनियादी इकाई परिवार है जो परिवार की सबसे वरिष्ठ स्त्री के इर्द गिर्द निर्मित होती है और मूल्यों से आच्छादित की जाती है।

भारतीय परिवार की केंद्रीय इकाई ही स्त्री है। गृहस्थी के अनेक मामलों में उसकी महत्ता स्वीकृत है। साधारणतः एक विवाह की मान्यता है। पतिव्रता धर्म की बहुत महिमा है। पितर पूजा का भी भारी महत्व है। घर का सबसे अधिक वयोवृद्ध पुरुष, यदि वह कार्यनिवृत्त न हो गया हो तो संयुक्त परिवार का कर्ता अथवा मुखिया होता है। कहीं कहीं उसे मालिक (स्वामी) भी कहते हैं। यह कर्ता अन्य वयोवृद्ध या वयस्क सदस्यों की सलाह से या उसके बिना ही परंपरा के आधार पर परिवार में कार्यविभाजन, उत्पादन, उपभोग आदि की व्यवस्था करता है और परिवार तथा उसके सदस्यों से संबधित सामाजिक महत्व के प्रश्नों का निर्णय करता है। घर की सबसे वयोवृद्ध नारी परिवार के महिला वर्ग की मुखिया होती है और जो कार्य महिलाओं के सुपुर्द है उनकी देखरेख तथा व्यवस्था करती है। संयुक्त परिवार में चाचा, ताऊ की विवाहित संतान और उसके विवाहित पुत्र, पौत्र आदि भी हो सकते हैं। साधारणतया पिता के जीवन में उसके पुत्र परिवार से अलग होकर स्वतंत्र गृहस्थी नहीं बसाते, किंतु यह अभेद्य परंपरा नहीं है। ऐसा समय आता है जब रक्तसंबंधों की निकटता के आधार पर एक संयुक्त परिवार दो या अनेक संयुक्त अथवा असंयुक्त परिवारों में विभक्त हो जाता है। असंयुक्त परिवार भी कालक्रम में संयुक्त रूप ले लेता है और संयुक्त परिवार का क्रम बना

“ भारतीय परिवार की केंद्रीय इकाई ही स्त्री है। गृहस्थी के अनेक मामलों में उसकी महत्ता स्वीकृत है। साधारणतः एक विवाह की मान्यता है। पतिव्रता धर्म की बहुत महिमा है। पितर पूजा का भी भारी महत्व है। घर का सबसे अधिक वयोवृद्ध पुरुष, यदि वह कार्यनिवृत्त न हो गया हो तो संयुक्त परिवार का कर्ता अथवा मुखिया होता है। कहीं कहीं उसे मालिक (स्वामी) भी कहते हैं। यह कर्ता अन्य वयोवृद्ध या वयस्क सदस्यों की सलाह से या उसके बिना ही परंपरा के आधार पर परिवार में कार्यविभाजन, उत्पादन, उपभोग आदि की व्यवस्था करता है और परिवार तथा उसके सदस्यों से संबधित सामाजिक महत्व के प्रश्नों का निर्णय करता है। घर की सबसे वयोवृद्ध नारी परिवार के महिला वर्ग की मुखिया होती है और जो कार्य महिलाओं के सुपुर्द है उनकी देखरेख तथा व्यवस्था करती है। ”

रहता है।

संयुक्त परिवारप्रणाली यद्यपि बहुत प्राचीन है, तथापि इसके आंतरिक स्वरूप में बहिर्विवाह, उत्तराधिकार तथा सांपत्तिक अधिकार के नियमों में, कालक्रम में परिवर्तन होता रहा है। औद्योगिक क्रांति ने पाश्चात्य देशों में परंपरागत संयुक्त परिवार भंग कर दिया है जिसका कारण बढ़ते हुए यंत्रीकरण के फलस्वरूप व्यक्ति को परिवार से बाहर मिली आजीविका सुरक्षा और उन्नति की सुविधाओं को बताया जाता है। भारत में भी औद्योगिक क्रांति के फलस्वरूप नई अर्थव्यवस्था और नए औद्योगिक तथा आर्थिक संगठनों का आरंभ हो चुका है। यातायात तथा संचार के नए साधन उपलब्ध हो रहे हैं और नगरीकरण तीव्रता से हो रहा है। पाश्चात्य विचारधारा और पाश्चात्य ढंग की शिक्षा दीक्षा तथा आदर्शों का प्रभाव भी कम नहीं है। विशेषकर स्वाधीनता के बाद विवाह, उत्तराधिकार, दत्तकग्रहण और सांपत्तिक अधिकार के संबंध में जा कानून लागू किए गए हैं उन्हें परिवार की संयुक्त प्रणाली के लिए हानिकारक समझा जाता है। इसी प्रकार आयकर के नियम भी इसके प्रतिकूल पड़ते हैं। वयस्क मताधिकार राजनीतिक लोकतंत्र भी संयुक्त परिवार के एकसत्तात्मक तथा व्यष्टिपरक अस्तित्व पर प्रहार कर रहे हैं। ऐसी अवस्था में जब अर्थव्यवस्था और उत्पादन के साधनों में भी बुनियादी परिवर्तन हो रहा है, परिवार के शासन, रचना और कार्यों में हेरफेर होना अवश्यंभावी है और वह परिलक्षित भी हो रहा है। देश में संयुक्त परिवार पहले से बहुत कम हो गए हैं। परिवर्तन के संबंध में विद्वानों में मुख्यतः दो प्रकार का विचार है। एक विचार के अनुसार परिस्थिति के प्रभावस्वरूप परिवार में कतिपय परिवर्तन होने पर भी उसका संयुक्त रूप नष्ट नहीं हो रहा है। दूसरे विचार के अनुसर औद्योगिक सभ्यता भारत में भी संयुक्त परिवार को बहुत कुछ उसी युगल परिवार के रूप में उपस्थित करेगी जो अमेरिका तथा यूरोप में प्रादुर्भूत हुआ है। वर्तमान पारिवारिक विघटन एंव परिवर्तनों को इस प्रक्रम की आरंभिक अवस्था बताया जाता है।

भारत के मालावार प्रदेश में नायर और तिया जाति में मातृ स्थानीय तथा मातृवंशी परिवार हाल तक रहा है। ऐसे परिवारों में पति अपने बच्चों के घर में एक अस्थायी आगंतुक होता है। उसके बच्चों की देखभाल उसका मामा करता है और उसके बच्चे अपनी माँ के परिवार का नाम ग्रहण करते हैं। परिवार का रूप संयुक्त है, जिसमें माँ की और उसकी पुत्री अथवा पौत्रियों की संतान होती है। इन परिवारों में घर का मुखिय मातृपक्षीय पुरुष होता है। असम राज्य के गारो और खासी जनजातियों में भी मातृवंशीय और मातृस्थानीय परिवार की प्रथा है। उत्तर प्रदेश के जौनसार बाबर में खस नाम की जनजाति में और आस पास के कुछ क्षेत्रों में बहुपति प्रथा है। परिवार में सब भाइयों की एक पत्नी और कभी-कभी एकाधिक सामूहिक पत्नियाँ हेती हैं। नीलगिरि की टोडा जनजाति में भी बहुपति प्रथा है, किंतु यहाँ एक स्त्री के पतियों में भाइयों के अतिरिक्त अन्य व्यक्ति भी हो सकते हैं। गैर जनजातीय समाज में कहीं भी बहुपति प्रथा नहीं मिलती।

इन सभी चर्चाओं के बाद यह कहना बेहद आवश्यक है कि भारत के परिवार के केंद्र में रिश्तों और उनकी संवेदना का बहुत ही महत्त्व है। रिश्ते और संवेदना वे आवश्यक तत्व हैं जो भारतीय परिवार के माध्यम से समाज को अपराध और विकृत मानसिकता की तरफ बढ़ने से रोकते हैं। इन्ही तत्वों के जरिये स्वस्थ समाज के निर्माण को सकारात्मक दिशा में ले जाया जाता है। जब परिवारों के विखंडन शुरू हुआ है तब से इन दो तत्वों यानी रिश्ते और संवेदना का सर्वाधिक क्षरण देखा गया है। यह क्षरण चिंता जनक है। इसे केवल संसकारों से रोका जा सकता है जिसकी प्रयोगशाला केवल परिवार है।

“भारत के मालावार प्रदेश में नायर और तिया जाति में मातृ स्थानीय तथा मातृवंशी परिवार हाल तक रहा है। ऐसे परिवारों में पति अपने बच्चों के घर में एक अस्थायी आगंतुक होता है। उसके बच्चों की देखभाल उसका मामा करता है और उसके बच्चे अपनी माँ के परिवार का नाम ग्रहण करते हैं। परिवार का रूप संयुक्त है, जिसमें माँ की और उसकी पुत्री अथवा पौत्रियों की संतान होती है। इन परिवारों में घर का मुखिय मातृपक्षीय पुरुष होता है।”

मानव सभ्यता की अनूठी पहचान है परिवार

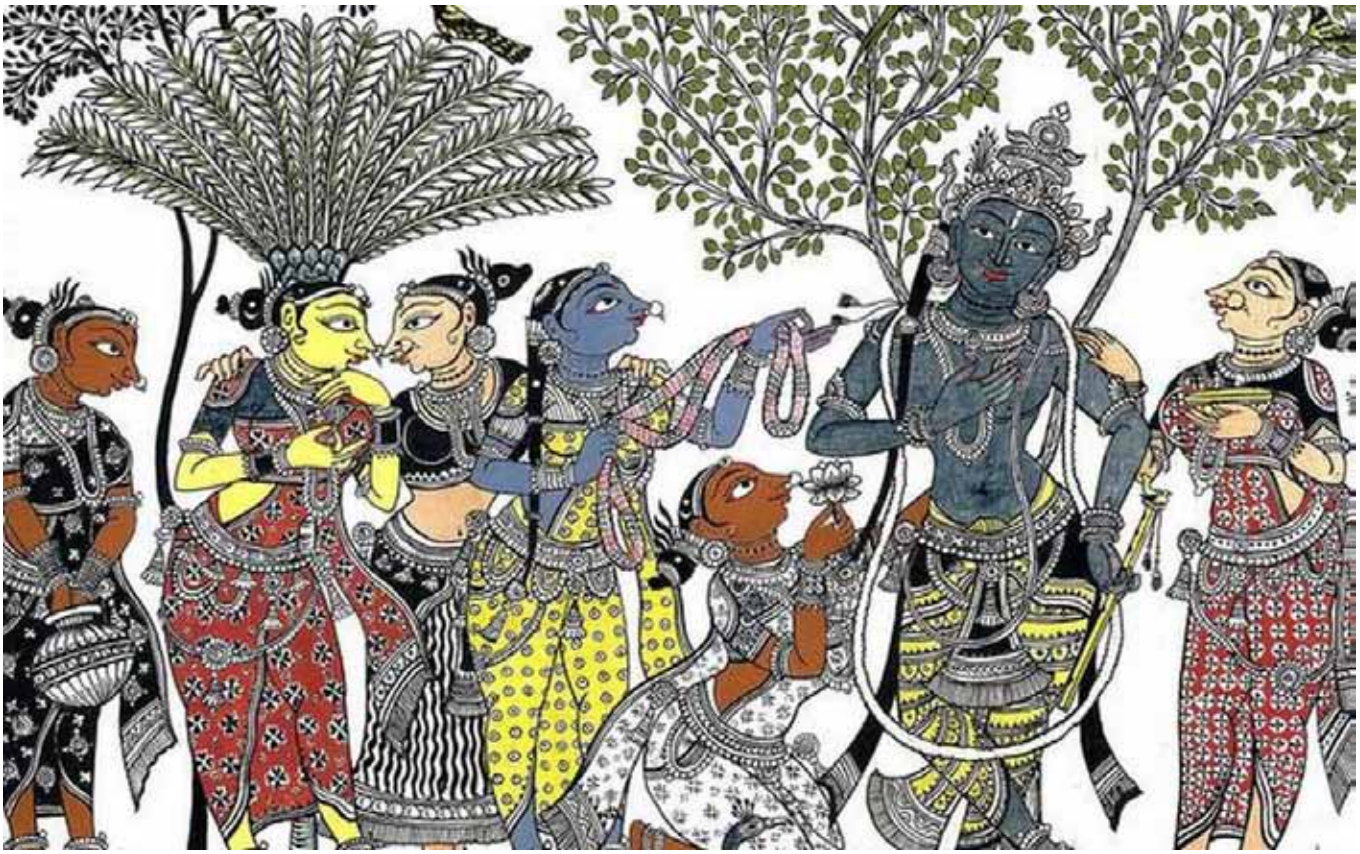

ललित गर्ग

संयुक्त परिवारों की परम्परा पर आज धुंधलका छा रहा है, परिवार टूटता है तो दीवारें भी ढहती हैं, आदमी भी टूटता है और समझना चाहिए कि उसका साहस, शक्ति, संकल्प, श्रद्धा, धैर्य, विश्वास बहुत कुछ टूटता/बिखरता है। क्रांति और विकास की सोच ठंडी पड़ जाती है और जीवन के इसी पड़ाव पर फिर परिवार का महत्व सामने आता है।

विश्व परिवार दिवस हर साल 15 मई को मनाया जाता है। देश एवं दुनिया को परिवार के महत्व को बताने के लिए यह दिवस मनाया जाता हैं। परिवार दो प्रकार के होते हैं- एक एकल परिवार और दूसरा संयुक्त परिवार। एकल परिवार में पापा- मम्मी और बच्चे रहते हैं। संयुक्त परिवार में पापा- मम्मी, बच्चे, दादा दादी, चाचा, चाची, बड़े पापा, बड़ी मम्मी, बुआ इत्यादि रहते हैं। इस दिवस मनाने की घोषणा सर्वप्रथम 15 मई 1994 को संयुक्त राष्ट्र अमेरिका ने की थी। संयुक्त परिवार टूटने एवं बिखरने की त्रासदी को भोग रहे लोगों के लिये यह दिवस बहुत अहमियत रखता है। बढ़ती जवाबदारी और जरूरतों को पूरा कर पाने का भय ही वह मुख्य कारण है जो अब संयुक्त परिवारों के टूटने का कारण बना है। जबकि वास्तव में मानव सभ्यता की अनूठी पहचान है संयुक्त परिवार और वह जहाँ है वहीं

स्वर्ग है। रिश्तों और प्यार की अहमियत को छिन्न-भिन्न करने वाले पारिवारिक सदस्यों की हरकतों एवं तथाकथित आधुनिकतावादी सोच से बुढ़ापा कांप उठता है। संयुक्त परिवारों का विघटन और एकल परिवार के उद्भव ने जहां बुजुर्गों को दर्द दिया है वहीं बच्चों की दुनिया को भी बहुत सारे आयोजनों से बेदखल कर दिया है। दुख सहने और कष्ट झेलने की शक्ति जो संयुक्त परिवारों में देखी जाती है वह एकल रूप से रहने वालो में दूर-दूर तक नही होती है। आज के अत्याधुनिक युग में बढ़ती महंगाई और बढ़ती जरूरतों को देखते हुए संयुक्त परिवार समय की मांग कहे जा सकते हैं।

हम चाहे कितनी भी आधुनिक विचारधारा में हम पल रहे हो लेकिन अंत में अपने संबंधों को विवाह संस्था से जोड़ कर परिवार में परिवर्तित करने में ही संतुष्टि अनुभव करते हैं। भारत गांवों का देश है, परिवारों का देश है, शायद यही कारण है कि न चाहते हुए भी आज हम विश्व के सबसे बड़े जनसंख्या वाले राष्ट्र के रूप में उभर चुके हैं और शायद यही कारण है कि आज तक जनसंख्या दबाव से उपजी चुनौतियों के बावजूद, एक 'परिवार' के रूप में, जनसंख्या नीति बनाये जाने की जरूरत महसूस नहीं की। ईंट, पत्थर, चूने से बनी दीवारों से घिरा जमीं का एक हिस्सा घर-परिवार कहलाता है जिसके साथ 'मैं' और 'मेरापन' जुड़ा है। संस्कारों से प्रतिबद्ध संबंधों की संगठनात्मक इकाई उस घर-परिवार का एक-एक सदस्य है। हर सदस्य का सुख-दुख एक-दूसरे के मन को छूता है। प्रियता-अप्रियता के भावों से मन प्रभावित होता है। घर-परिवार जहां हर सुबह रोटी, कपड़ा, मकान, शिक्षा, चिकित्सा की समुचित व्यवस्था की जुगाड़ में धूप चढ़ती है और आधी-अधूरी चिंताओं का बोझ ढोती हुई हर शाम घर-परिवार आकर ठहरती है। कभी लाभ, कभी हानि, कभी सुख, कभी दुख, कभी संयोग, कभी वियोग, इन द्वंद्वात्मक परिस्थितियों के बीच जिंदगी का कालचक्र गति करता है। भाग्य और पुरुषार्थ का संघर्ष चलता है। आदमी की हर कोशिश 'घर-परिवार' बनाने की रहती है। सही अर्थों में घर-परिवार वह जगह है जहां स्नेह, सौहार्द, सहयोग, संगठन सुख-दुख की साझेदारी, सबमें सबक होने की स्वीकृति जैसे जीवन-मूल्यों को जीया जाता है। जहां सबको सहने और समझने का पूरा अवकाश है। अनुशासन के साथ रचनात्मक स्वतंत्रता है। निष्ठा के साथ निर्णय का अधिकार है। जहां बचपन सत्संस्कारों में पलता है। युवकत्व सापेक्ष जीवनशैली से जीता है। वृद्धत्व जीए गए अनुभवों को सबके बीच बांटता हुआ सहिष्णु और

हम चाहे कितनी भी आधुनिक विचारधारा में हम पल रहे हो लेकिन अंत में अपने संबंधों को विवाह संस्था से जोड़ कर परिवार में परिवर्तित करने में ही संतुष्टि अनुभव करते हैं। भारत गांवों का देश है, परिवारों का देश है, शायद यही कारण है कि न चाहते हुए भी आज हम विश्व के सबसे बड़े जनसंख्या वाले राष्ट्र के रूप में उभर चुके हैं और शायद यही कारण है कि आज तक जनसंख्या दबाव से उपजी चुनौतियों के बावजूद, एक 'परिवार' के रूप में, जनसंख्या नीति बनाये जाने की जरूरत महसूस नहीं की।

संतुलित रहता है। ऐसा घर-परिवार निश्चित रूप से पूजा का मंदिर बनता है।

संयुक्त परिवारों की परम्परा पर आज धुंधलका छा रहा है, परिवार टूटता है तो दीवारें भी ढहती हैं, आदमी भी टूटता है और समझना चाहिए कि उसका साहस, शक्ति, संकल्प, श्रद्धा, धैर्य, विश्वास बहुत कुछ टूटता/बिखरता है। क्रांति और विकास की सोच ठंडी पड़ जाती है और जीवन के इसी पड़ाव पर फिर परिवार का महत्व सामने आता है। परिवार ही वह जगह है भाग्य की रेखाएं बदलने का पुरुषार्थी प्रयत्न होता है। जहां समस्याओं की भीड़ नहीं, वैचारिक वैमनस्य का कोलाहल नहीं, संस्कारों के विघटन का प्रदूषण नहीं, तनावों की त्रासदी की घुटन नहीं। कोई इसी परिवाररूपी घेरे के अंधेरे में रोशनी ढूंढ लेता है। बाधाओं के बीच विवेक जमा लेता है। भीड़ में अकेले रह जाता है। दुख में सुख का संवेदन कर लेता है। घर-परिवार को सिर्फ अपनी नियति मानकर नहीं बैठा जा सकता। क्योंकि इसी घर में मंदिर बनता है और कहीं घर ही मंदिर बन जाता है।

कहते हैं कि आपका काम, रबड़ की गेंद है, जिस पर जितना जोर देते हैं, वह उतना ऊंचा उठता है। पर आपका परिवार कांच की गेंदें हैं, जो हाथ से छूटती हैं तो टूट ही जाती हैं। कई बार हम सब भूल जाते हैं कि जीवन में सबसे जरूरी क्या है। हम इधर-उधर की बातों में इतना डूब जाते हैं कि जो सच में जरूरी है, उसे छोड़ देते हैं। हम परिवार की खुशियों के नाम पर सामान तो खरीदने में लगे रहते हैं, पर उन चीजों पर ध्यान नहीं देते जो परिवार में सबको संतुष्टि का एहसास कराती हैं, सबको जोड़ती है। 'परिवार' शब्द हम भारतीयों के लिए अत्यंत ही आत्मीय होता है। अपने घर-परिवार में अपने आपका होना ही जीवन का सत्य है। यह प्रतीक्षा का विराम है। यही प्रस्थान का शुभ मुहूर्त है।

किसी भी समाज का केंद्र परिवार ही होता है। परिवार ही हर उम्र के लोगों को सुकून पहुँचाता है। अथर्ववेद में परिवार की कल्पना करते हुए जो कहा गया है उसका सारांश है पिता के प्रति पुत्र निष्ठावान हो। माता के साथ पुत्र एकमन वाला हो। पत्नी पति से मधुर तथा कोमल शब्द बोले।' परिवार कुछ लोगों के साथ रहने से

“भारत गांवों का देश है, परिवारों का देश है, शायद यही कारण है कि न चाहते हुए भी आज हम विश्व के सबसे बड़े जनसंख्या वाले राष्ट्र के रूप में उभर चुके हैं और शायद यही कारण है कि आज तक जनसंख्या दबाव से उपजी चुनौतियों के बावजूद, एक ‘परिवार’ के रूप में, जनसंख्या नीति बनाये जाने की जरूरत महसूस नहीं की। ईंट, पत्थर, चूने से बनी दीवारों से घिरा जमीं का एक हिस्सा घर-परिवार कहलाता है जिसके साथ ‘मैं’ और ‘मेरापन’ जुड़ा है।”

नहीं बन जाता। इसमें रिश्तों की एक मजबूत डोर होती है, सहयोग के अटूट बंधन होते हैं, एक-दूसरे की सुरक्षा के वादे और इरादे होते हैं। हमारा यह फर्ज है कि इस रिश्ते की गरिमा को बनाए रखें। हमारी संस्कृति में, परंपरा में पारिवारिक एकता पर हमेशा से बल दिया जाता रहा है। परिवार एक संसाधन की तरह होता है। फिर क्या कारण है कि आज किसी भी घर-परिवार के वातायन से झांककर देख लें-दुख, चिंता, कलह, ईर्ष्या, घृणा, पक्षपात, विवाद, विरोध, विद्रोह के साये चलते हुए दीखेंगे। अपनों के बीच भी परायेपन का अहसास पसरा हुआ होगा। विचारभेद मनभेद तक पहुंचा देगा। विश्वास संदेह में उतर आएगा। ऐसी अनकही तनावों की भीड़ में आदमी सुख के एक पल को पाने के लिए तड़प जाता है। कोई किसी के सहने/समझने की कोशिश नहीं करता। क्योंकि उस घर-परिवार में उसके ही अस्तित्व के दायरे में उद्देश्य, आदर्श, उम्मीदें, आस्था, विश्वास की बदलती परिधियां केंद्र को ओझल कर भटक जाती हैं। विघटन शुरू हो जाता है। इस बिखराव एवं विघटन पर नियंत्रण पाने के लिये हमने गणि राजेन्द्र विजयजी के नेतृत्व में सुखी परिवार अभियान चलाया, जिससे परिवार संस्था को मजबूती देने के व्यापक उपक्रम किये जा रहे हैं।

हमने कई बार देखा है जो व्यक्ति अकेले

होते हैं या अकेले रहते हैं किसी दुःख या परेशानियों के वजह से डिप्रेशन में आकर आत्महत्या कर लेते हैं। क्योंकि उनके पास कोई परिवार नहीं, जिससे वह अपने दिल की बात कहें। ऐसा भी कहा गया हैं कि बातें शेयर करने से दिल हल्का हो जाता हैं और दिल को सुकून भी मिलता है। लेकिन जब परिवार ही नहीं होगा तो व्यक्ति किसे अपनी बात कहे? इसलिए परिवार का होना बहुत जरुरी होता है। परिवार के साथ रहते हुए हम बड़ी से बड़ी कठिनाइयों का समाना आसानी से कर सकते हैं। परिवार के अभाव में मानव समाज के संचालन की कल्पना भी दुष्कर है। प्रत्येक व्यक्ति किसी न किसी परिवार का सदस्य रहा है या फिर है। उससे अलग होकर उसके अस्तित्व को सोचा नहीं जा सकता है। हमारी संस्कृति और सभ्यता कितने ही परिवर्तनों को स्वीकार करके अपने को परिष्कृत कर ले, लेकिन परिवार संस्था के अस्तित्व पर कोई भी आंच नहीं आई। वह बने और बन कर भले टूटे हों लेकिन उनके अस्तित्व को नकारा नहीं जा सकता है। उसके स्वरूप में परिवर्तन आया और उसके मूल्यों में परिवर्तन हुआ लेकिन उसके अस्तित्व पर प्रश्नचिह्न नहीं लगाया जा सकता है। हम चाहे कितनी भी आधुनिक विचारधारा में हम पल रहे हो लेकिन अंत में अपने संबंधों को विवाह संस्था से जोड़ कर परिवार में परिवर्तित करने में ही संतुष्टि अनुभव करते हैं।

संयुक्त परिवार के अनेक अनूठे उदाहरण है, जिनमें बुलंदशहर के राजगढ़ी गांव में पांच पीढियां एक छत के नीचे रह रही हैं। कुनबे में परदादा से लेकर परपोती तक 46 सदस्य हैं लेकिन उनका एक चूल्हा है। मिजोरम में एक परिवार के 181 सदस्य हैं और इस परिवार का रिकॉर्ड्स गिनीज वर्ल्ड रिकॉर्ड्स में भी शामिल है। यह विश्व का सबसे बड़ा परिवार है। इस परिवार के मुखिया का नाम जिओना चाना हैं। जिओना चाना मिजोरम के बक्तवांग गांव में चार मंजिलें मकान में रहते हैं। इतना बड़ा परिवार होने के बावजूद चाना के परिवार वाले बड़े ही प्यार और सम्मान के साथ रहते है। इस समय चाना 72 साल के हैं और स्वयं को बेहद भाग्यशाली मानते हैं।

हालांकि भारत में एकल परिवारवाद अभी ज्यादा नहीं फैला है। आज भी भारत में ऐसे कई परिवार हैं जिनकी कई पीढ़ियां एक साथ रहती हैं और कदम-कदम पर साथ निभाती हैं। लेकिन दिल्ली, मुंबई जैसे महानगरों में स्थिति धीरे-धीरे बिगड़ने लगी है। उम्मीद है जल्द ही समाज में संयुक्त परिवार की अहमियत दुबारा बढ़ने लगेगी और लोगों में जागरूकता फैलेगी कि वह एक साथ एक परिवार में रहें जिसके कई फायदे हैं। इंसानी रिश्तों एवं पारिवारिक परम्परा के नाम पर उठा जिन्दगी का यही कदम एवं संकल्प कल की अगवानी में परिवार के नाम एक नायाब तोहफा होगा।

एकत्व की भावना से मूर्त होगी विश्व-परिवार की अवधारणा

श्रेया झा

परिवार शब्द से एकत्व का भाव आता है, हालांकि परिवार की एकजुटता को हम परिवार के सदस्यों के आपसी सौहार्द से आँकते-समझते हैं। अगर परिवार में तीन लोग हैं, तो परिवार इन तीन लोगों का एक ऐसा समुच्चय हो, जिसके सदस्य एक-दूसरे से दूर रहकर भी आत्मीयता का अनुभव कर पाएँ। वह परिवार परिवार नहीं, जो साथ रहकर भी टकराव में रहे। एक परिवार का लक्ष्य होना चाहिए कि दूर रहकर भी आपस में बँधे रहें।

वर्तमान परिदृश्य यह है आज हमारा परिवार बुराई के चरम पर है, यहां हर कोई अपने आप को परिवार का लीडर समझता है। हाँ, अच्छाई आज भी कहीं हमारे अंदर है, लेकिन लालच और स्वार्थ जैसे विकार हमें अपने भाइयों और बहनों के लिए कुछ करने के बाद कुछ पाने की चाहत की वजह से उनसे दूर करता है, जिससे आपस की दूरियां बढ़ती हैं।

(जेएनयू से स्नातक और प्रजापिता ब्रह्माकुमारी ईश्वरीय विश्वविद्यालय से सम्बद्ध)

आज जो हमारा परिवार है, उसमें छोटा सा बच्चा भी अपने अनुसार करना चाहता है, पर उसके लिए क्या सही है उसे नहीं पता। इतना तो ठीक, लेकिन अगर परिवार के मुखिया को भी यह नहीं पता कि कम उम्र के बच्चे के लिए कि सही क्या है, और ग़लत क्या तो इससे परिवार का हित कैसे सध सकता है?

वह परिवार, परिवार नहीं जब इसके सदस्य एक-दूसरे को नीचे गिराने के लक्ष्य से कार्य करते हैं। उदात्त अर्थों में, हमारी धरती एक परिवार है, जिसका मुखिया हम ईश्वर को मान सकते हैं। जब भी इस परम शक्ति की बात होती है, तो धरती के हर धर्म और संप्रदाय के बीच 'सबसे ऊपर कौन है' की होड़ लग जाती है। यहाँ तक कि सब अपने-अपने धर्म-गुरुओं को सर्वोपरि मनवाने की प्रतिस्पर्धा करने लगते हैं(जबकि एकत्त्व की बगिया में कभी टकराव के तूफान नहीं आ सकते। साथ रहकर आगे बढ़ना एक परिवार के लिए तब आसान हो सकता है जहां एक जैसे नियम हों, चलने वाले बेशक अनेक हों पर चलाने वाला एक हो। जहाँ किधर चलना है, इसको लेकर ही विवाद हो, तो स्थिति कैसी होगी और प्रगति कैसी?

परिवार से अगर हम यह समझें कि घर में रहने वाले मां-बाप और भाई-बहन सब एकत्त्व से रहते हैं, तो यह सही आँकलन नहीं है, क्योंकि अमूमन लोग एक घर में रहकर भी एक नहीं रहते। सदस्यों के बीच, पीढ़ी का, विचारों का और संस्कारों का टकराव हर पल होता रहता है। इसके बरक्स उदारमना होकर अगर हम परिवार को बृहद् रूप में समझें जिसका चलाने वाला एक है, तो इसका मुखिया और नियंता सिर्फ ईश्वर को कह सकते हैं।

परिवार में सबसे बड़े और अनुभवी को ही प्रमुख माना जाता है। उनकी जिम्मेदारी होती है कि वह समभाव से परिवार के हर एक व्यक्ति को सम्मान मिलने का आश्वासन दें, लेकिन आज यह बहुत मुश्किल है। इसीलिए अगर एक मुखिया के नियम से चला जाए तो एकत्व की स्थिति बनी रहती है, जो केवल अलौकिक रूप से ही संभव हो सकता है।

वर्तमान परिदृश्य यह है आज हमारा परिवार बुराई के चरम पर है, यहां हर कोई अपने आप को परिवार का लीडर समझता है। हाँ, अच्छाई आज भी कहीं हमारे अंदर है, लेकिन लालच और स्वार्थ जैसे विकार

हमें अपने भाइयों और बहनों के लिए कुछ करने के बाद कुछ पाने की चाहत की वजह से उनसे दूर करता है, जिससे आपस की दूरियां बढ़ती हैं । तथ्य यह है कि हमारे परिवार की एकजुटता हमारे ही अंदर की बुराइयों की वजह से उत्पन्न हो रही है। अगर परिवार के प्रमुख पर निरंतर भरोसा रहे तो हम अपने लक्ष्य को पा सकते हैं, जैसे जब टिड्डे का दल आसमान में चलता है, तब यह भी एक पल के लिए छाया कर देता है, तो सोचें कि हम इंसानों की एकजुटता ऐसा क्यों नहीं कर सकती? टिड्डों के दल में भी एक मुखिया रहता है, दल को आगे बढ़ाने के लिए कुछ गाइड भी होते हैं, जिनके पीछे बाक़ी टिड्डे उड़ते हैं। हम ऐसा क्यों नहीं करते?

हम इंसानों से एक छोटी सी गलती हुई। हम अपने मुख्य गाइड, ईश्वर को भूल गए धर्म और संप्रदायों में बट गए। इसके परिणामस्वरूप हम गई। आज क्रिश्चियन धर्म लोग अपनी ताकत बढ़ाने लिए धर्मांतरण करवाते हैं। इस तरह इस्लामिक परिवार भी अपने आप को आगे करने में लगे हैं । बौद्ध धर्म के कुछ मतावलम्बी 'आज की सबसे ज्यादा जरूरी चीज शांति' का लालच देकर अपने धर्म को आगे करने में लगे हैं। ये सब यह भूल गए की हमारा मूल तो एक ही है। हम सब विकारों के वश में आकर बुराइयों को अपने संस्कार में इ तरह पिरोते चले गए कि अपने स्वभाव को भूल गए , प्यार से गए। इससे परिवार का मूलाधार एकत्व की भावना खो गई। सदस्य एक-दूसरे को प्रेम और सम्मान देना भूल गए ।

आज जब परिवार का चित्र सामने आता है, तब वहां से निराशा और दुख की लहरें सामने आती हैं।हम जाति- धर्म, रंगभेद आदि को दीवार बनाकर आगे बढ़ने की कोशिश कर रहे हैं, जोकि असंभव है। सच तो यह है कि हम देश और राज्यों में अलग अलग होकर भी एक रह सकते हैं अगर हमारी भावना शुध्द हो तथा मन में एक होने की भावना हो। आज विश्व के किसी भी विद्यालय में नर्सरी क्लास में बच्चों को जब 'family' पढ़ाया जाता है, तब पेज पर मां-बाप की तस्वीर चिपकाने के लिए कहा जाता है और चैप्टर की हेडिंग 'my happy family' रहती है। हम इससे यह समझ सकते हैं कि परिवार की समझ क्या है और आज क्या समझाया-पढ़ाया जा रहा है। परिवार जोकि एकजुट रहने का तरीका है, उसे आज के विद्यालयों में छोटे बच्चों को बृहद-परिवार से अलग होकर एक सीमित और छोटी सी दुनिया में रहने के लिए सिखाया जाता है।

पूरी दुनिया में 200 से ज्यादा देश और हमारे देश में 25 से ज्यादा राज्य हैं। भाषाई, जाति और धर्म की विविधता को साथ लेकर चलना हमारे देश की एकत्व की भावना को दर्शाता है । एक रहने के लिए सहनशील होना जरूरी है। इसी तरह, जब हम हमारे बड़े परिवार या विश्वपरिवार की बात करते हैं जिसमें 200 से अधिक देश हैं तब है करोड़ों लोग एक साथ तभी आ सकते हैं जब हमारी भावना एक हो, मन पवित्र हो ।

आप चाहे दुनिया के किसी भी कोने में रहें, लेकिन जब आपको आपके परिवार के जरूरत पड़े तो वह रूप में आपके साथ आ जाए, क रूप में ही सही- यही आपकी ीप्सा रहती है। पर, यह उस रिवार में संभव नहीं, जहां चार व्यक्ति चार-दीवारी के अंदर सिर्फ जरूरत भर के लिए और तात्कालिक सुख के लिए साथ रहते हों। वैसे, अगर उदारता है तब परिवार का साथ तो वह भी है जब आप भारतवासी होकर अमेरिका में रह रहे हों और एक अमेरिकन आपके सुख- दुख का सहभागी बने।

जब दो इंसान एक-दूसरे न के करीब होकर एक-दूसरे समझ सकें, निःस्वार्थ भाव से सवा क लिए आगे बढ़ें, तो यह हमारे अंदर में विराजित सात्त्विक गुणों को दर्शाता है। सच्चाई है कि जब कोई विपरीत परिस्थिति में होता है, तब मायावी और क्षणिक खुशियाँ देने वाली चीजें काम नहीं आतीं, पैसे काम नहीं आते, तब तो हमें हमारे संबंधों की जरूरत पड़ती है।

यह जरूरी नहीं कि परिवार के सभी सदस्य हमेशा साथ रहें। अगर सच्चा स्नेह हो तो दूर रहकर भी साथ रहा जा सकता है। ज़रूरत यह है कि सिर्फ तात्कालिक खुशी और स्वार्थ न देखकर, समग्र विश्व के जरूरतमंदों के लिए प्रयास करें, सबको मान दें, सबका सम्बल बनें। अगर हमारे संस्कार में बदलाव आ जाए तो हम विश्व-परिवार (world family) की अवधारणा को मूर्त रूप दे सकते हैं।

भाषा-विज्ञान की छतरी में परिवार

कमलेश कमल

मनुष्य जीवन के एक बुनियादी पहलू के रूप में परिवार की महत्ता और उपादेयता सर्वकालिक तथा सार्वभौम है। प्रागैतिहासिक काल से आज तक परिवार का स्वरूप मनुष्य और उसकी चेतना के अनुसार भले ही बदलता रहा हो, पर इसकी उपस्थिति तो निर्विवाद है ही। यही कारण है कि अगस्त कॉम्टे जब इसे समाज की आधारभूत इकाई कहते हैं, तब यह सर्वथा सम्यक् और सटीक प्रतीत होता है।

व्याकरणिक दृष्टि से देखें तो परिवार शब्द बना है- परि और वार से। परि उपसर्ग का अर्थ है- चारों ओर। वार शब्द बना है 'वारः' से। वारः स्वयं 'वृ' से बना है जो 'आवृत्ति' का सूचक है। इसी से 'वार' का अर्थ हुआ- 'दिन जो रोज़ आता है।' इसके आधार पर देखें, तो सब दिन एक साथ रहने वाले और एक-दूसरे से घिरे रहते वाले लोगों का समूह परिवार है। इसे ऐसे भी देख सकते हैं कि जो अपनी संस्कृति, सुविचार तथा मूल्य रूपी प्रकाश चारों ओर फैलाए, वह परिवार है।

परिवार को परिभाषित करते हुए श्रीराम शर्मा ने कहा- 'समाज की सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण इकाई परिवार होती है। पारिवारिक जीवन के विश्लेषण से समाज के स्वरूप की स्पष्ट झाँकी मिल जाती है।'

वैसे, तात्त्विक दृष्टिकोण से दुनिया भर में परिवार का कोई एक ही अर्थ लिया जाता है, ऐसा नहीं है। हाँ, 'परिवार' और परिवार से संबंधित संबंधों के लिए प्रयुक्त शब्दों को भाषा-विज्ञान के नज़रिये से देखने पर प्रतीत होता है कि साम्य का एक सूत्र, समानता का धागा सदा है।

अंग्रेजी में परिवार के लिए 'family' शब्द का प्रयोग होता है। इस शब्द की उत्पत्ति लैटिन के 'famulus' से हुई है, जिससे शब्द बना 'familia' अर्थात् 'household servant' या 'घरेलू-नौकर'। लेट मिडल एज में इंग्लैंड में यही 'family' (फैमिली) बना, जिसका अर्थ था व्यक्तियों का एक समूह जो एक छत के नीचे रहता हो, जिसमें सगे- संबंधी और नौकर शामिल थे। फैमिली के लिए रक्त संबंध का होना आवश्यक नहीं है। ठीक इसी तरह की स्थिति 'परिवार' के लिए है।

भारतीय परिप्रेक्ष्य में देखें, तो पूरे विश्व को एक परिवार माना गया है -'वसुधैव कुटुम्बकम'। अंग्रेजी में भी परिवार से ही बने familiar (फैमिलियर) शब्द को देखें, तो वह अर्थ देता है 'जाना पहचाना'। हम जिस से भी जुड़े हैं, वह परिवार जैसा हो जाता है। कहते भी हैं- 'He is like my family !' या 'वह मेरे परिवार जैसा है।'

तो, हम देखते हैं कि परिवार के लिए एक छत के नीचे रहना, यौन-संबंध, रक्त-संबंध या साझी रसोई का होना आवश्यक नहीं है। परिवार के समाज शास्त्रीय विभाजन, यथा एकल परिवार, संयुक्त परिवार या फ़िर मातृसत्तात्मक या पितृसत्तात्मक परिवार के विभेद भी देश-काल-समाज आधारित हैं, जिनके अपने-अपने गुण-दोष हैं। बहरहाल, यहाँ, हमारा उद्देश्य है कि भाषा-विज्ञान की

"भारतीय परिप्रेक्ष्य में देखें, तो पूरे विश्व को एक परिवार माना गया है -'वसुधैव कुटुम्बकम'। अंग्रेजी में भी परिवार से ही बने familiar (फैमिलियर) शब्द को देखें, तो वह अर्थ देता है 'जाना पहचाना'। हम जिस से भी जुड़े हैं, वह परिवार जैसा हो जाता है। कहते भी हैं- 'He is like my family !' या 'वह मेरे परिवार जैसा है।'"

(लेखक केन्द्रीय पुलिस सेवा के अधिकारी हैं। भाषा विज्ञान, कथा साहित्य और कविताओं पर गहरी पकड़, हिन्दी भाषा के लिए समर्पित।)

छतरी के नीचे परिवार और इससे सम्बद्ध शब्द क्या अर्थ-उद्बोधन करते हैं?

अगर 'कुटुंब' शब्द को देखें, तो यह परिवार के मुकाबले एक निश्चित परिभाषा देता है। यह 'कुटुंब्' धातु में अच् प्रत्यय जुड़कर बना है, जिसका अर्थ है एक ही कुल या परिवार के वे सब लोग जो एक ही घर में मिलकर रहते हों। भाषा-विज्ञान के अनुसार देखें,तो परिवार के लिए एक ही पूर्व पुरुष के वंशज होना आवश्यक नहीं है(जबकि गोत्र में यह भाव है।

आरंभिक काल में जहाँ गोवंश रखे जाते थे, वह गोत्र था। एक साधु की संतान को गोत्र माना गया।

'अपात्यम पौत्रप्रभृति गोत्रम' अर्थात् पोते के साथ शुरू होने वाली वंशावली ('एक साधु की संतान)' गोत्र कहलाया। इसलिए सभी गोत्र किसी न किसी साधु के नाम पर हैं। तो, गोत्र का भाव और उसकी परिभाषा ज़्यादा स्पष्ट है। इसमें भी एक गोत्र के वंशज 'सगोत्र पिंडज' और भिन्न गोत्र के वंशज 'अगोत्र पिण्डज' या 'भिन्न पिण्डज' कहलाए।

अब परिवार और पारिवारिक जनों के लिए विभिन्न भाषाओं में प्रयुक्त शब्दों पर ग़ौर करें, तो उनमें एक अद्भुत समानता का दिग्दर्शन होता है। संस्कृत में जो 'मातृ' है, वह अंग्रेजी का 'mother' है, इस्लाम का 'मादर' ग्रीक का meter, लैटिन का mater, डच का moeder है। इसी तरह पिता के लिए संस्कृत में पितृ है तो गोथिक में fader है, अंग्रेजी में 'father' है, ग्रीक में pater है, जर्मन में vater है और अवेस्ता में तो pita ही है।

संस्कृत का 'भ्रातृ' यदि हिन्दी में 'भाई' बना तो भारोपीय परिवार की अन्य भाषाओं में भी इस मूल से ज़्यादा दूर नहीं है। भ्रातृ अवेस्ता में 'bratar' है, रूसी में 'brat' है, जर्मन में 'bruder', ग्रीक में 'phrater', गोथिक में 'brother', स्लाव में 'bratu' है।

स्वयं हिंदी में इस मूल से बने अनेक शब्द समान भावनात्मक बंधन दिखाते हैं- भ्रातृज, भ्रातृजा, भतीजा, भतीजी, भावज, भ्रातृजाया, भौजाई, भौजी आदि शब्दों को देखते ही इनके मूल और इनकी भाषिक-यात्रा का पता चल जाता है।

इसी तरह 'भगिनी' हिन्दी में बहिन, बहन है। अंग्रेजी में 'sister' है, रूसी में cectra, जर्मन में scwwester है, ग्रीक में 'sor' है, डच में 'zuster' है तो गोथिक में 'swister' है। इसी तरह संस्कृत का 'श्वसुर' हिन्दी में 'ससुर' बना, जो जर्मन के 'sweher' और लैटिन के 'socer' से बहुत दूर नहीं है।

संस्कृत में 'पुत्र' के लिए जो 'सुनु' है, वही सुत है। 'सू' का अर्थ पैदा होना है, तो सुनु का अर्थ है 'वह जो पैदा हुआ हो'। 'पवनसुत' पवन से पैदा हुए। मज़ेदार यह है कि यही सुनु, अंग्रेजी में son हुआ, रूसी में cin, अवेस्ता में hunu है, जर्मन में sohn है, लिथुआनिया की भाषा में sunus है।

अगर 'पुत्र' को देखें, जो कि पितृसत्तात्मक परिवार का वाहक है, तो इसकी व्युत्पत्ति ही इसकी महत्ता को प्रमाणित करती है। सुधी पाठकों के लिए यह जानना मज़ेदार होगा कि इसका शुद्ध रूप है 'पुत्र' ! वस्तुतः, पुत् धातु में 'त्र' जुड़कर यह शब्द बनेगा। प्रयत्न-लाघव के कारण यह 'पुत्र' हो गया है। कठोपनिषद् में एक श्लोक है- 'पुं नरकात् त्रायते इति पुत्रः।' इसका अर्थ है जो नरक से तारण करे, वह पुत्र है।

परिवार के आदर्श और सदस्यों से अपेक्षित मर्यादा को लेकर अलग-अलग देशकाल में अलग-अलग मान्यता रही है, पर भावनात्मक और सकारात्मक जीवन-यापन सबमें विद्यमान है। रामायण की बहुपत्नी व्यवस्था में भी आदर्श परिवार उपस्थित है, तो महाभारत के बहुपति वाले उदाहरण में भी यह मिल जाता है। तुलसीदास जी लिखते हैं-

बंदऊँ कौशल्या दिसि प्राची।

कीरति जासु सकल जग माची।।

दशरथ राउ सहित सब रानी।

सुकृत सुमंगल मूरति मानी।।

अगर इसके बरक्स हम महाभारत के द्रौपदी के उदाहरण को देखें, तो वेदव्यास जी ने उसे भी सर्वोत्तम गरिमा से निरूपित किया है।

इस तरह हम यह देखते हैं कि परिवार एक संस्थायीकृत सामाजिक समूह का विशेषण भर नहीं है, जिसपर जनसंख्या प्रस्थापन का भार है(न ही यह विवाह संबंध, आर्थिक व्यवस्था, सामान्य आवास या वंशनाम-व्यवस्था के अवयवों से बनता है। यह तो सामूहिकता का भावबोधक संबोधन है। इन सभी गुणों के समवेत् रूप में समुद्घाटित होने में ही परिवार की सार्थकता है।

आलेख

परिवार का बदलता स्वरूप बच्चों का छिनता बचपन

डॉ अजय ओझा

आजकल एक झूठ धड़ल्ले से बोला जा रहा है - भारत विकास की राह पर अग्रसर है और हम विकसित हो रहे हैं। अब भारत विकास की ओर बढ़ रहा है कि विनाश की ओर यह एक अलग बहस का मुद्दा है लेकिन इस तथाकथित विकास ने भारतीय समाज के आधारस्तंभ परिवार की संरचना को ढहा दिया है जिससे सम्पूर्ण समाज का तानाबाना छिन्न भिन्न हो गया है। सनातन सभ्यता के आरम्भ से ही परिवार भारतीय समाज का आधारस्तम्भ रहा है।

संयुक्त परिवार टूटने से कृषि भूमि का बँटवारा होने से लोगों के पास इतनी जमीनें भी नहीं बंची कि वे कृषि कार्य से अपना जीविकोपार्जन कर सकें। रातोंरात लाखों किसान दिहाड़ी मजदूर में तब्दील हो गये। पढ़े लिखे लोग नौकरी के लिए सरकारी और गैरसरकारी क्षेत्रों का रुख किये तो अनपढ़ लोग मजदूरी की तलाश में शहरों की ओर चल पड़े।

c /o डॉ वासवी कीड़ो म0 न0 . 133, एच बी रोड,थ ड़पखना, राँची (झारखण्ड) 824001

प्रत्येक व्यक्ति के जन्म, पालन पोषण और जीवनयापन में परिवार की महत्ति भूमिका रहती है। भारत में शुरू से ही संयुक्त परिवार की अवधारणा रही है जिसमें माता पिता के अलावा दादा दादी, चाचा चाची, भाई बहन, आदमी जन, पशु पक्षी, गाँव घर, हीत मीत और रिश्तेदार होते हैं। व्यक्ति के विकास में परिवार का योगदान सबसे महत्वपूर्ण माना जाता है लेकिन इस विकास की अँधी दौड़ ने परिवार की समूची संरचना को ही नष्ट भ्रष्ट कर दिया है। संयुक्त परिवार तेजी से ढह रहे हैं और झूठे विकास के नाम पर एकल परिवारों का प्रचलन तेजी से बढ़ रहा है। इससे समस्त भारतीय समाज और संस्कृति के नष्ट हो जाने का तो खतरा उपस्थित हो ही गया है लेकिन इसका सबसे बुरा प्रभाव बच्चों पर पड़ा है। उनका बचपन छिन गया है।

आज से तीन दशक पहले गाँवों में संयुक्त परिवार की बहुतायत थी। प्रत्येक परिवार जीवन यापन के लिये कृषि और पशुपालन करता था। बच्चे जमकर दूध पीते थे और पढ़ाई लिखाई के साथ साथ दादा दादी से रात में कहानियां सुना करते थे। नदी तालाब में स्नान, बगीचों में मटरगस्ती, यार दोस्तों के साथ गिल्ली डंडा और चिक्का कब्बड्डी तथा गरमी की छुट्टियों में नानी या बुआ गाँव की सैर। अगर नानी गाँव कुछ ज्यादा ही रुक गये तो कोई परवाह नहीं क्योंकि हर गाँव के सरकारी स्कूलों का सिलेबस एक ही होता था। बच्चे आराम से कहीं भी रहते थे और जमकर शुद्ध भोजन करते थे तथा इत्मीनान से पढ़ते लिखते थे। उनका लालन पालन विशुद्ध प्राकृतिक वातावरण में होता था। इसलिये उनका स्वास्थ्य बेहतर रहता था। दादा दादी, नाना नानी, बुआ फूफा, चचेरे, ममेरे, फूफेरे भाइयों के साथ रहने के कारण सामाजिक दृष्टि से भी वे बेहतर सामंजस्य स्थापित करने में सफल होते थे। लेकिन अब विकास के नाम पर लोगों ने संयुक्त परिवार को तोड़ना शुरू कर दिया है जिससे गाँव, समाज और रहन सहन में भारी बदलाव होते जा रहा है।

संयुक्त परिवार टूटने से कृषि भूमि का बँटवारा होने से लोगों के पास इतनी जमीनें भी नहीं बंची कि वे कृषि कार्य से अपना जीविकोपार्जन कर सकें। रातोंरात लाखों किसान दिहाड़ी मजदूर में तब्दील हो गये। पढ़े लिखे लोग नौकरी के लिए सरकारी और गैरसरकारी क्षेत्रों का रुख किये तो अनपढ़ लोग

की ओर चल पड़े। पलायन की रफ्तार इतनी तेज हुई कि सारे गाँव वीरान हो गये। उपभोक्तावाद की ऐसी आँधी चली कि उसमें सारी सभ्यता, सँस्कृति हवा हो गई। घर घर टीवी, मोबाइल, इण्टरनेट का बोलबाला हो गया। नयी दुनिया के साथ कदमताल मिलाने के लिये अँग्रेजी का ज्ञान अति अनिवार्य माना जाने लगा। हर गाँव, गली, मोहल्ले, कस्बों में अँग्रेज़ी माध्यम के स्कूल कुक्कुरमूतों की तरह उग आये। लोग सरकारी स्कूलों को हेय समझने लगे। शिक्षा के साथ साथ चिकित्सा का भी नीजिकरण हो गया। आजादी के बाद शिक्षा और चिकित्सा की व्यवस्था सरकार की जिम्मेवारी थी और सरकार भरसक इसकी जिम्मेदारी उठा भी रही थी लेकिन बढ़ते उपभोक्तावाद और बाजारीकरण के झाँसे में आये लोगों का रुख देखकर ... सरकार ने भी आँख मुँद लिया। स्कूल अब शिक्षा का केन्द्र न रहकर दूकान में तब्दील हो गये। मनमानी फीस, मँहगी किताबें, फैंसी ड्रेस, जूते, गर्दन में फँसी टाई, पीठ पर भारी बस्ता और खटारा बसों और टेम्पूओं में भेड़ बकरी की तरह लदे बच्चे।।। यही पहचान है इन स्कूलों की। बहुत सारे लोग तो मात्र बच्चों को पढ़ाने के नाम पर गाँव छोड़कर नजदीकी शहर या कस्बे में किराये पर घर लेकर रहने लगे हैं। सुबह में ही बच्चों को कच्ची नींद जगाकर हड़बड़ी में नास्ता तैयार कर अनेक महिलाओं को बच्चों को स्कूल या बस स्टाप के किनारे खड़ा देखा जा सकता है। स्कूल से थका माँदा लौटा बच्चा खाना खाने के बाद होमवर्क पूरा करने के नाम पर ट्यूशन के लिये दौड़ता है। शाम को लौट देर रात टीवी देखता है या मोबाइल पर उलझा रहता है। दिनरात पढ़ने की हिदायत और परीक्षा में ज्यादा से ज्यादा नम्बर लाने के प्रेशर में बच्चों का स्वास्थ्य बिगड़ जाता है। वह मानसिक रूप से तनावग्रस्त हो जाता है और गुपचुप रहने लगता है। आँखों पर ज्यादा भार पड़ने के कारण उनकी आँखों पर असमय चश्मा चढ़ जाता है। बहुत बच्चे इस तनाव को झेल नहीं पाते और परीक्षा में फेल हो जाते हैं। कुछ बच्चे तो आत्महत्या भी कर लेते हैं।

परिवार का स्वरूप बिगड़ने से खानपान और रहन सहन में भी भारी बदलाव आया है। पहले गाँवों में लोग शुद्ध दूध, दही, मट्ठा, घी, अपने खेतों से उपजे शुद्ध अनाज और ताजी सब्जियां, बगीचों से प्राप्त ताजे फल का सेवन करते थे। घर में बने शुद्ध सत्तू, चूड़ा, भूजा, घुघनी खाते थे और बुलंद रहते थे। छोटी मोटी बीमारियां तो दादी नानी के घरेलू नुस्खों से ही छूमंतर हो जाती थी। अब बाजारीकरण के दौर में लोग बच्चों को ब्रेड, बिस्किट, चाउमीन, पास्ता, खिलाते हैं और दूध दही की जगह हॉर्लिक्स, बॉर्नवीटा, कोकोकोला आदि पिलाते हैं। परिणाम स्वरूप बच्चे नाना प्रकार की बीमारियों से ग्रस्त हो रहे हैं। ईलाज के नाम पर नीमहकीम डॉक्टर मँहगे मँहगे एण्टीबायोटिक दवाइयाँ और सूइयाँ तथा सीरप देकर बच्चों का स्वास्थ्य पूर्णतः बरबाद कर देते हैं। बहुत बच्चे इन नीमहकीम चिकित्सकों के चक्कर में असमायिक काल कवलित हो जाते हैं। अप्राकृतिक रहन सहन और अशुद्ध खानपान के कारण नाना प्रकार की बीमारियां प्रकट हो गई हैं। कैंसर, डायबिटीज, हाई तथा लो ब्लडप्रेशर, हार्टअटैक, हाइपरटेंशन, ब्रेनहेमरेज, पक्षाघात आदि बीमारियां सरेआम हो गई हैं और किसी भी उम्र के व्यक्ति को कभी भी अपने चपेट में ले ले रही हैं। जबकि कुछ ही बरसों पहले इस तरह की बिमारियों का भारत में नामोनिशान तक नहीं था।

भारतीय परिवार की संरचना में आये बदलाव से और भी बहुत सारी

सामाजिक विकृतियां पैदा हुई जिनका विस्तृत विवरण इस छोटे से आलेख में सम्भव नहीं है। बाजारीकरण और उपभोक्तावाद के कुप्रचार के झाँसे में आकर भारतीयों ने सदियों पुरानी अपनी परम्परा और जीवन पद्धति को त्याग पश्चिम का अँधानुकरण करना शुरू किया जिसका विभत्स दुष्परिणाम अब धीरे धीरे सामने आ रहा है। गाँवों के बड़े बुजुर्ग इस स्थिति से बेहद दुखी और खिन्न हैं। अपनी मनोव्यथा व्यक्त करते हुए वे कहते हैं कि घोर कलयुग छा गया है। भाई भाई दुश्मन हो गया है। बड़े छोटे का लिहाज खत्म हो गया है। बहू बेटियाँ बेशर्म हो गई हैं। बड़े बड़े परिवार बँटवारे से बिखर रहे हैं। बड़े बूढों को लोग भार समझ रहे हैं। अगर यही स्थिति रही तो लगता है कि आने वाले दिनों में लोग बुजुर्गों को लावारिस मरने के लिए सड़कों पर छोड़ देंगे। पहले के बड़े बुजुर्ग समाज में इस तरह के बदलाव को देखकर हैरान परेशान हैं। 80 वर्षीय किसनलाल कहते हैं कि पहले गाँवों में दूध दही कोई नहीं बेचता था। मट्ठा तो सारे गाँव में बाँटा जाता था। अब तो गाँव गाँव डेयरी खुल गया है और लोग सारा दूध बेचकर खुद एक कप चाय पीकर गुजारा कर रहे हैं। बूढ़ी काकी याद करती हैं कि हमलोग के जमाने में सारा परिवार मिलकर घरेलू काज निपटाता था। हँसी खुशी से व्रत त्योहार मनाया जाता था। लेकिन आजकल तो हर परिवार में कटुता का वातावरण है। घर घर सास, बहू, ननद के उठापटक से परेशान है।

भाई भाई दुश्मन हो गया है। बड़े छोटे का लिहाज खत्म हो गया है। बहू बेटियाँ बेशर्म हो गई हैं। बड़े बड़े परिवार बँटवारे से बिखर रहे हैं। बड़े बूढों को लोग भार समझ रहे हैं। अगर यही स्थिति रही तो लगता है कि आने वाले दिनों में लोग बुजुर्गों को लावारिस मरने के लिए सड़कों पर छोड़ देंगे। पहले के बड़े बुजुर्ग समाज में इस तरह के बदलाव को देखकर हैरान परेशान हैं।

बूढ़ी दादी उर्मिला देवी अतीत में झाँकती याद करती हैं – हमलोगों के जमाने में घर मुहल्ले की महिलायें खाना पीना खिलाने के बाद एक साथ बैठकर सिलाई, कताई, बुनाई करती थीं। डलिया, चटाई आदि बुनती थीं। देश, दुनिया, रामायण, महाभारत, पुराण की कथा कहानियाँ कहती सुनती थीं। शादी, ब्याह, जनेऊ के मंगलगीत गाती सीखती थीं। लेकिन देखते देखते समय बदल गया। अब तो कोई किसी के यहाँ नहीं आता जाता। नयी पीढ़ी की लड़कियां बहुयें हमलोगों के पास बैठने से कतराती हैं। रातदिन मोबाइल टीवी से चिपकी रहतीं हैं। खैर राम राम करते हमलोगों का समय तो कट गया। भगवान जाने आगे आने वाला समय कैसा होगा।।।

सचमुच बहुत विकट और भयावह स्थिति है। आखिर इसका जिम्मेवार कौन है। नयी पीढ़ी और बच्चों को इसका जिम्मेवार नहीं ठहराया जा सकता। उनको तो जो दिया जा रहा है वह करने सीखने को मजबूर हैं। निश्चित रूप से इन सब के लिए 70 के दशक में जन्मी पीढ़ी जिम्मेदार है जो पूर्वजों से प्राप्त प्रचलन को बरकरार नहीं रख पाई और बाजारीकरण और उपभोक्तावाद के जाल में उलझकर अँधी खाई की ओर बढ़ती गई। गाँव घर के पुराने बुजुर्ग स्पष्ट कहते हैं कि आजकल के लोग कृषि कार्य और पशुपालन को हेय समझते हैं। मजदूर भी गाँव में काम करना नहीं पसंद करते हैं। शादी ब्याह होते ही लोग परिवार से अलग हो जा रहे हैं। गाँव के आहर, पोखर, तालाब भरते जा रहे हैं। बाग बगीचा कटते जा रहे हैं। गाय भैंस पालना कोई नहीं चाह रहा है। सब लोग एक अदद नौकरी की तलाश में हैं। घर का खरच बढ़ते जा रहा है। सब लोग एकटक सरकार की तरफ ताक रहे हैं। आखिर सरकार भी क्या कर सकती है। हमलोगों के जमाने में कृषि और पशुपालन को उतम कार्य माना जाता था और नौकरी को निकृष्ट । कहावत थी - उतम खेती मध्यम वान -- अधम चाकरी भीख निदान। लेकिन नयी पीढ़ी की तो बात ही निराली है। सचमुच में भारतीय परिवार और परम्परायें जिस तेजी से ढह रही हैं उससे समूची सँस्कृति के नष्ट हो जाने का खतरा पैदा हो गया है। कुछ विद्वान लोगों का कहना है कि जिस भारतीय सँस्कृति की हजार साल की गुलामी भी कुछ ना बिगाड़ पाई वह मात्र कुछ बरसों के बाजारवाद के प्रभाव में आकर तेजी से क्षरण की ओर बढ़ रही है। नकल की आड़ में अकल को ताख पर रख जिस तरह भारतीय अपसंस्कृति को अपनाते जा रहे हैं वह सचमुच बेहद चिंतनीय है। एकतरफ जहाँ पश्चिम के लोग शान्ति की तलाश में वाराणसी, वृन्दावन, हरिद्वार और ऋषिकेश की गलियों की खाक छान रहे हैं वहीं भारतीयों द्वारा पश्चिम का नकल करना सचमुच आश्चर्य पैदा करता है।

बहरहाल अब भी बहुत कुछ नहीं बिगड़ा है। समूची स्थिति पर गम्भीरता से विचार कर इसको बदला जा सकता है। वर्तमान पीढ़ी अपने को बहुत पढ़ा लिखा और शिक्षित मानती है। लेकिन सही मायने में शिक्षित और समझदार वही होते हैं जो अतीत और वर्तमान का तुलनात्मक अध्ययन कर सुन्दर भविष्य के लिए सही मार्ग का अवलम्बन करें। आदमी वही काटता है जो बोता है। बबूल बोकर आम नहीं पाया जा सकता। कमजोर नींव की ईमारत बुलन्द नहीं हो सकती। जड़ कमजोर होगा तो पौधा विकास नहीं कर सकता। परिवार भारतीय समाज का आधार है। अगर परिवार की संरचना छिन्न भिन्न होगी तो समाज भी छिन्न भिन्न होगा। परिवार मजबूत होगा तो गाँव, समाज मजबूत होगा और भारत एक मजबूत राष्ट्र होगा। याद रखें, बच्चे किसी भी देश के भविष्य होता हैं। अगर बच्चे मजबूत होंगे तो देश मजबूत होगा। स्वामी दयानंद सरस्वती ने कहा था -- 'वेदों की ओर लौटो।' वर्तमान समय की यही पुकार है -- ' परिवार बचाओ - देश बचाओ।'

●●●

PAROVARYAM

The world of Handicraft

भारत के हस्तशिल्प को घर-घर तक ले जाने का प्रयास है। हमारे यहां जूट, बांस, हैंडपेंटेड शॉल और दुपट्टे, कश्मीर का सेमी पश्मीना, मिट्टी से बनी उपयोगी वस्तुएं और पुरानी साड़ियों से बने पायदान इत्यादि मिलते हैं और वह भी बहुत ही उचित मूल्य पर।

आप फेसबुक पर ऑर्डर दे सकते हैं।
https://www.facebook.com/pg/kraft02/about/

A-70/4, Gali No. 5, Madhu Vihar, I.P. Extension, Patparganj, Near Hasanpur Depot, Delhi-92

Call: 7827326292, 9717047552

साहचर्य जनित प्रेम ही भारतीय परिवार का मेरुरज्जु

भारतीय जीवन में परिवार का तात्पर्य विवाहित-युगल और उनके बच्चों भर से नहीं होता। पति-पत्नी के युग्म से जिस 'दम्पती' नामक एकीकृत रूप की निर्मित्ति होती है, उसके साथ ही कुटुंब के घनिष्ठ लोगों को समवेत् रूप में एक इकाई मान परिवार की संज्ञा से अभिहित किया जाता है। उदात्त भारतीय संस्कृति के उदारचेता ऋषियों ने तो इससे भी आगे जाकर पूरी वसुधा को ही परिवार मानने का उद्घोष कर दिया।

दीप्ति झा

छत्तीसगढ़ के बस्तर के आदिवासियों की 'घोंटुल' व्यवस्था भी सहजीवन जैसा ही प्रतीत होती है, पर ग़ौर से देखने पर यह उससे कहीं उन्नत और टिकाऊ है। इन घोंटूलों में युवक-युवतियों को भावी जीवन के लिए भली-भाँति तैयार किया जाता है। जिनमें स्थायित्व की संभावना क्षीण होती है, वे आरम्भ में ही अलग हो जाते हैं। विवाह के बाद इसकी नौबत ही नहीं आती।

(आलेख- , स्नातक शिक्षिका, केंद्रीय विद्यालय, सी एम एम, जबलपुर)

यहाँ 'विवाह' भी कोई समझौता या व्यवस्था नहीं, वरन् 'विशेष वहनम्' के प्रण का संस्कार है। एक बार अग्नि को साक्षी मानकर सात परिक्रमा कर लेने के उपरांत वर-वधू एक दम्पती बन जाते हैं, जिस युति को सात जन्मों तक भंग नहीं किया जा सकता। यही कारण है कि तलाक़ या divorce की अवधारणा यहाँ के अनुकूल नहीं है। दो अपरिचित लोग एक बंधन में बंधते हैं और रिश्ता जन्म-जन्मांतर तक निभ जाता है।

इसकी तुलना पश्चिम के love at first sight, सहजीवन (live-in relationship) से करें तो पता लगता है कि स्थाईत्व के पैमाने पर भारतीय संस्कृति के विवाह की कोई सानी नहीं है। शादी के कुछ घण्टों के अंदर ही तलाक़ तो खर्राटे की वजह से तलाक़ आदि की खबरें पढ़कर हमारे यहाँ के आमजन अंचभित हो जाते हैं। यहाँ तो उदाहरण है कि ज़बरन भी सिंदूर लगा दिया तो जीवन भर का साथ हो गया। यही कारण है कि पश्चिम के युवाओं की दिलचस्पी भारतीय-रीति से विवाह करने में बढ़ी है।

गहराई में उतरकर देखें, तो भारतीय संस्कृति का प्रेम मूलतः सहचर्यजनित होता है। 'प्रथम दृष्टया प्रेम' की संकल्पना को यहाँ उद्दीपन मानकर कई चरणों में जाँचने-परखने और आगे बढ़ने की बात की जाती है। हालाँकि, स्वयंवर की प्रथा भी इसी भारतभूमि पर रही है और शकुंतला और भरत का 'वनवासी उद्दाम प्रेम' भी यहीं के साहित्य में है, पर इनमें से किसी में भी एक बार जुड़ने के बाद अलग होने की व्यवस्था नहीं है।

छत्तीसगढ़ के बस्तर के आदिवासियों की 'घोंटुल' व्यवस्था भी सहजीवन जैसा ही प्रतीत होती है, पर ग़ौर से देखने पर यह उससे कहीं उन्नत और टिकाऊ है। इन घोंटूलों में युवक-युवतियों को भावी जीवन के लिए भली-भाँति तैयार किया जाता है। जिनमें स्थायित्व की संभावना क्षीण होती है, वे आरम्भ में ही अलग हो जाते हैं। विवाह के बाद इसकी नौबत ही नहीं आती।

यहाँ तो पति-पत्नी एक साथ रहकर एक-दूसरे के प्रेम में पगते हैं। यहाँ तो प्रभु श्रीराम भी मर्यादा पुरुषोत्तम राम होते हैं, जो लोकोचित कर्त्तव्य करते हैं, लोकोचित प्रेम और विरह का प्रदर्शन करते हैं।

हे खग-मृग हे मधुकर श्रेणी।

तुम देखउँ सीता मृगनयनी।।

इसी तरह का भाव जायसी द्वारा विरचित किसानी जीवन का महाकाव्य 'पद्मावत' की विरहिणी नायिका (धर्मपत्नी) नागमती भी प्रदर्शित करती है।

पिय सौं कहेहु सँदेसरा हे भौंरा!

हे काग!!

सो धनि बिरहै जरि मुइ तेहिक

धुवाँ हम्ह लाग।।

ध्यातव्य है कि रामचरितमानस के नायक जहाँ खग-मृग से अपनी विरह-वेदना प्रदर्शित करते हैं, वहीं नागमती प्रेम की पीर में इतनी डूबी हुई है कि वह भी भौंरे, कौवे से बातें करने लगती है।

वेदना की तीव्रता ऐसी है कि प्रियतम तक अपना संदेश पहुँचाने के लिए वह भौंरे और कौवे के द्वारा भी अपने भावों की अभिव्यंजना करती है।

सहचर्यजनित प्रेम से उद्भिद प्रेम को आगे केदारनाथ अग्रवाल स्वर देते हैं-

'मिलकर वे दोनों प्रेमी, दे रहे खेतों में पानी।

मुझे जगत् जीवन का प्रेमी, बना रहा है प्रेम-तुम्हारा।।

इस तरह हम देखते हैं कि भारतीय जनजीवन में परिवार की हर उद्भावना सहचर्यजनित है। प्रेम के लिए यहाँ का कवि लिखता है-

यूँ ही कुछ मुस्काकर तुमने,

परिचय की वह गाँठ लगा दी। था,

पथ पर मैं भूला-भाला।

फूल उपेक्षित कोई फूला।

ध्यातव्य यह कि यहाँ भी परिचय की गाँठ ही लगती है, बस। आगे पारिवारिक जीवन का गौरवशाली प्रासाद तो सहचर्यजनित प्रेम से ही बनता है।

●●●

परिवार की महत्ता

एक घर में रहने वाले दो,तीन या अधिक व्यक्तियों के एक समूह को ' परिवार' कहते हैं। परिवार में सदस्यों की संख्या के अनुसार छोटा मूल परिवार, बडा मूल परिवार या संयुक्त परिवार हो सकता है। और प्रत्येक परिवार के अंदर

उषालक्ष्मी शर्मा

परिवार के सदस्यों के बीच खून, विवाह, गोद लेना जैसे संबंधों के कारण पारिवारिक रिश्ता हो सकता है। अपने संपूर्ण विकास और समाज में भले के लिए एक नये जन्म हुए बच्चे को सकारात्मक पारिवारिक रिश्तों की जरूरत होती है। ' परिवार से किसी व्यक्ति को पहचान मिलती है ।' मनुष्य एक सामाजिक प्राणी है इसके बिना समाज की कल्पना भी नहीं की जा सकती।एक स्वस्थ और समझदार परिवार से स्वस्थ समाज का निर्माण होता है और स्वस्थ समाज से देश का ।

परिवार समाज की महत्वपूर्ण और मजबूत इकाई है। एक परिवार बच्चों के लिए प्रथम पाठशाला है , जहाँ वह संस्कृति परम्परा और सबसे जरूरी आधारभूत पारिवारिक मूल्यों को सीखते हैं एवं उसके चरित्र निर्माण में महत्वपूर्ण योगदान देते हैं।

आज की दुनियाँ में यह माना जाता है कि जितना छोटा परिवार उतना सुखी परिवार। यह बात एक तरीके से अच्छी भी है । क्योंकि

आधुनिक युग में चीजों के बढते दाम महँगे जीवन-यापन बड़े परिवार का पालन-पोषण करना भी मुश्किल है।आज लोग परिवार के महत्व को समझ नहीं पा रहे हैं इसका सबसे बडा कारण नई दुनियाँ और लोगों का बदलता मन और भौतिक सुख सुविधाओं का आवश्यकता से अधिक संग्रह। लोगों का बड़ी संख्या में शहरों की ओर पलायन भी छोटे परिवार को बढ़ावा देने के कारण में शामिल है।अंततः यह बात सिध्द है कि परिवार बड़ा हो या छोटा व्यक्ति उसके बिना नहीं रह सकता। प्रिंसेज डायना ने कहा है कि ' दुनियाँ में सबसे महत्वपूर्ण स्थान परिवार का है ।'

एलेक्सहेली का कथन है कि ' परिवार हमारे अतीत के हर काल्पनिक तरीके से जुडा हुआ होता है और हमारे भविष्य के लिए पुल की तरह होता है ।'

परिवार के साथ होने के लाभ –

- सामाजिक सुरक्षा प्राप्त होती है
- सुदृढ समाज का निर्माण होता है
- परिवार वह माध्यम है जो आने वाली पीढ़ी को सही राह और सकारात्मक विचार मन में लाने में मदद करता है।
- व्यक्ति को आगे बढ़ाने के लिए प्रोत्साहित करता है ।

इसलिए अपने जीवन में हमेशा अपने माता-पिता, दादा-दादी, चाचा-चाची ,भाई बहन आदि रिश्तों का सम्मान करें और उनके साथ खुशियों भरा जीवन व्यतीत करें।

संयुक्त परिवार की कहें ! वह तो ' वटवृक्ष' की मीठी छाँव है। इसमे परिवार का हर सदस्य अपने आपको बिल्कुल सुरक्षित महसूस करता है। कभी कभी यहाँ पर समस्या आती है कि कमाने वाले कम और व्यय करने वाले अधिक हो जाते हैं जबाबदारी एक के ही हिस्से में आ जाती है ।इस कठिन प्रश्न का हल यही है कि परिवार के समझदार बुजुर्गो द्वारा कार्य व अर्थ का उचित बँटवारा कर किया जाए। परिवार के सभी सदस्यों को चाहिए कि अपने उत्तरदायित्व का भली भांति पालन करें। बड़े सदस्य छोटे सदस्यों पर स्नेह रखें एवं छोटे सदस्य बडों के सम्मान का ध्यान रखें और विशेषकर महिला सदस्यों के लिए सभी के मन में आदर भाव सदा ही बना रहे। सभी का कर्त्तव्य है कि घर की समस्या को घर से बाहर न करें। मिलजुलकर समस्या का समाधान करें।छोटी बड़ी चुनौती तो सभी के सामने खडी रहती हैं बस सोच को थोड़ा सा नम्र बनाने की आवश्यकता है ।

आखिर में बस मैं यही आपको बताना चाहती हूँ कि हमेशा अपने परिवार के लोगों के महत्व को समझें और अपने से बडों का सम्मान करें क्योंकि जो नई पीढ़ी हमसे सीखेगी वही सम्मान वह आनेवाली पीढी को हस्तांतरित करेगी ।संस्कृति और परम्परा के संवाहक के रूप में परिवार का यह बहुत बडा दायित्व है जो यह इकाई बाखूबी निभा रही है। अनुशासन, प्रेम, सहयोग, अपनापनद आदि परिवार का ही उपहार है हमारे लिए । परिवार नामक समुदाय, संस्था का महत्व किसी भी युग में कम नहीं हो सकता।

'आपको एक मजबूत परिवार की जरूरत होती है क्योंकि वे आपको प्यार करते हैं और बिना किसी शर्त के आपका साथ देते हैं ये मेरा सौभाग्य है कि मेरे पास मेरे पिता,माँ और मेरी बहन है।'

●●●

> संयुक्त परिवार की कहें ! वह तो ' वटवृक्ष ' की मीठी छाँव है। इसमे परिवार का हर सदस्य अपने आपको बिल्कुल सुरक्षित महसूस करता है । कभी कभी यहाँ पर समस्या आती है कि कमाने वाले कम और व्यय करने वाले अधिक हो जाते हैं जबाबदारी एक के ही हिस्से में आ जाती है ।इस कठिन प्रश्न का हल यही है कि परिवार के समझदार बुजुर्गो द्वारा कार्य व अर्थ का उचित बँटवारा कर किया जाए ।परिवार के सभी सदस्यों को चाहिए कि अपने उत्तरदायित्व का भली भांति पालन करें।

समन्वय और संरक्षण का नाम परिवार

डॉ अर्पण जैन अविचल

समाज की सक्रियता और राष्ट्र के निर्माण की प्राथमिक इकाई के तौर पर सम्पूर्ण ब्रह्मांड में स्वीकार्य चेतना का नाम, सशक्तिकरण का एकाधिकार, सामंजस्य की भूमिका और समन्वय का अनूठा उदाहरण यदि सृष्टि पर कहीं है, तो वह परिवार है।

परिवार महज रिश्ते, नातेदारों, लोगों के रहने या समाज में स्वीकार्य की पहचान मात्र नहीं है(बल्कि यह परिवार रूपी वृक्ष सम्पूर्ण समवसरण में एकता, नेतृत्व, समन्वयता, साक्षात् जीवटता आदि का परिचायक भी है।

परिवार शब्द का प्रथम अक्षर 'प' प्रवाह का सूचक है, जिसमें शीर्ष नेतृत्व से अंतिम संतति तक विचारों, संवेदनाओं और भावनाओं का प्रवाह सम्मिलित है। द्वितीय अक्षर 'र' रक्षण का प्रतीक है यानी सदस्यों की सुरक्षा, रक्षा, छवि की रक्षा आदि शामिल है। तृतीय अक्षर 'व' व्यवस्था का संकेतक है जिसमें सामंजस्य के साथ सुचारू संचलन हेतु व्यवस्था का निर्माण सम्मिलित है। इसी शब्द का चौथा अक्षर 'र' भी राह का संदेश देता है, मुखिया से लेकर संतान तक एक राह का अनुसरण करते है जिसे अनुशासन की संज्ञा दी गई है।

किसी भी ग्राम, नगर, प्रान्त, समाज, राष्ट्र का निर्माण की जीवंतता का परिसूचक परिवार को माना जाता है। व्यक्ति यदि परिवार का संचालन, संयोजन, सम्मेलन, सहअनुगम और सांसारिक तत्व का निर्वहन बखूबी कर लेता है, उसमें रहना सीख लेता है, उसके अनुशासन और स्थायित्व को समझ लेता है वही व्यक्ति देश व समाज के लिए हितकर और उद्देश्य अनुरूप लाभप्रद हो सकता है।

बिना परिवार के निर्वहन के समाज का कोई वजूद ही नहीं है। पौराणिक कथाओं के अनुसार द्रोण जब अपनी बदहाली के दौर से गुजर रहे थे, तभी उनका पुत्र दूध हेतु नगर में तरस गया था, ऋषि संतानों ने उस अश्वथामा को चावल का आटा घोल कर दूध बता कर पिलाया और यह घटना द्रोण की आंखों के सामने हुई। तत्पश्चात द्रोण गाँव-गाँव गाय की भिक्षा मांगने लगे। एक राजा जो द्रोण के मित्र थे उनसे भी इसी दौरान मदद मांगने गए। उन्होंने भी द्रोण का खूब उपहास उड़ाया।

उस दौरान द्रोण का पुत्र अश्वत्थामा भी उन्हीं के साथ चल रहा था, जिसने यह माजरा भी देखा। वो अपने अपमान का बदला भी लेना चाहते थे और कार्य पाना भी। जब द्रोण हस्तिनापुर पहुँचें तो महाराज ने उनकी व्यथा सुनी और राजपुत्रों को युद्ध, शस्त्र आदि की शिक्षा देने का काम द्रोण को सौंप दिया।

कई वर्षों के बाद जब राजा ने सभी का कार्य देखा तो द्रोण को दक्षिणा में एक राज्य भेंट किया। द्रोण ने उस राज्य के आधे हिस्से का शासक अपने पुत्र अश्वत्थामा को बना दिया। अश्वत्थामा भी राजपुत्रों के साथ शिक्षा ग्रहण करता है, तो वह भी युद्ध नीति में पारंगत होता गया और अपने राज्य का सुसंचालन करने लगा।

इस दौरान घटोत्कच ने युद्ध का आव्हान

“बिना परिवार के निर्वहन के समाज का कोई वजूद ही नहीं है। पौराणिक कथाओं के अनुसार द्रोण जब अपनी बदहाली के दौर से गुजर रहे थे, तभी उनका पुत्र दूध हेतु नगर में तरस गया था, ऋषि संतानों ने उस अश्वथामा को चावल का आटा घोल कर दूध बात कर पिलाया और यह घटना द्रोण की आंखों के सामने हुई। तत्पश्चात द्रोण गाँव-गाँव गाय की भिक्षा मांगने लगे।”

(लेखक डॉ। अर्पण जैन 'अविचल' मातृभाषा उन्नयन संस्थान के राष्ट्रीय अध्यक्ष हैं तथा देश में हिन्दी भाषा के प्रचार हेतु हस्ताक्षर बदलो अभियान, भाषा समन्वय आदि का संचालन कर रहे हैं।)

किया, राक्षक सेना को अकेले अश्वत्थामा ने ही खदेड़ दिया। सूर्य अस्त होते ही अश्वत्थामा ने युद्ध विराम करके उस क्षण घटोत्कच्छ को युद्ध न करने की सलाह दी। जब ऋषियों ने अश्वत्थामा के शौर्य और साहस की खूब बड़ाई की, तब अश्वत्थामा ने इस बात को स्वीकार किया कि आज जो कुछ भी युद्ध कौशल सीख पाया हूँ, उसके पीछे कारण मेरा परिवार मेरे पिता है। क्योंकि यदि मेरे पिता मेरे दूध पीने की चिंता न करते, तो हम उस राजा से भेंट भी नहीं करते जिसने पिताजी का अपमान किया था, और अपमान नहीं होता तो सम्भवतः हम युद्ध क्षेत्र में प्रवेश ही नहीं करते और न ही शौर्य प्रदर्शन का अवसर प्राप्त होता।

यही कड़वा सत्य है कि परिवार में प्रत्येक सदस्य का मान-अपमान, खुशी-दुःख, सफलता-असफ़लता- सभी स्थितियों में परिवार एक इकाई बनकर खड़ा रहता है। इसीलिए परिवार की स्वीकार्यता भी हैं।

प्रेम तत्व की अधिकता और सामंजस्यतावादी विचारधारा ही ये तय करती है कि परिवार अच्छा है या बुरा। वर्तमान समय में जिस तरह से परिवारों का विघटन आरंभ हुआ है, यह भविष्य के लिए अच्छे संकेत भी नहीं है। आपसी सौहार्द, समन्वय और एकता ही परिवारों की प्रगति के कारक तत्व है। जिन परिवारों में यह गुण विद्यमान है वहाँ कभी क्लेश , पीड़ा, असफलता प्रवेश ही नहीं करते। इसलिए परिवार को मजबूत करना है तो सकारात्मक दृष्टि से गुणों का उपयोग और विघटनकारी तत्वों से दूरी आवश्यक है। अन्यथा ढाक के तीन पात।

बिना परिवार के निर्वहन के समाज का कोई वजूद ही नहीं है। पौराणिक कथाओं के अनुसार द्रोण जब अपनी बदहाली के दौर से गुजर रहे थे, तभी उनका पुत्र दूध हेतु नगर में तरस गया था, ऋषि संतानों ने उस अश्वथामा को चावल का आटा घोल कर दूध बता कर पिलाया और यह घटना द्रोण की आंखों के सामने हुई। तत्पश्चात द्रोण गाँव-गाँव गाय की भिक्षा मांगने लगे।

प्रेम ही है परिवार का पर्याय

प्रणीता सिंह

प्रेम, विश्वास और संरक्षण के लिए एक शब्दध का प्रयोग करना चाहें तो वह शब्द् है - परिवार। परिवार, जहां हमें बिना शर्त असीम प्रेम मिलता है। जहां प्रेम पाने के लिए हमें किसी को प्रसन्न रखने, किसी का मनभावन करने की बाध्यता नहीं, नाहक अच्छे बने रहने की आवश्यकता नहीं। स्व यं को श्रेष्ठ दिखाने या उपयोगी सिद्ध करने की यहां कोई होड नहीं होती। हम जैसे हैं उसी रूप में हमें स्वीकारा जाता है, प्रेम किया जाता है। समस्त दुर्गणों के साथ भी सहर्ष स्वीकारा जाता है, प्रेम से गले लगाया जाता है।

“भौतिकवाद के प्रभाव और एक दूसरे से आगे बढ़ने की होड़ में प्रेम का स्थान ईर्ष्या और दुर्भावना ने ले लिया है। एक दूसरे का हाथ पकड़ आगे बढ़ने की जगह लोगों ने दूसरे को गिराकर आगे बढ़ना सीख लिया है। संपन्न दिखने की चाह में गरीब पड़ोसी और रिश्तेदार से दूरी बनाते-बनाते न जाने कब अपने नाते-रिश्तेदारों और यहां तक कि माता-पिता और भाई-बहनों से भी दूरी बना ली है।”

(आलेख- प्रणीता सिंह, अर्द्धसैनिक बल में राजभाषा के लिए समर्पित हिन्दी सेविका)

प्रेम व परस्पर विश्वास ही परिवार का आधार हैं। जहां संतान को विश्वास है कि माता-पिता उसकी सभी आवश्यकताओं की पूर्ति करेंगे और उसके भविष्य को स्वर्णिम बनाने का पूरा प्रयास करेंगे। वहीं माता पिता आश्वस्त होते हैं कि उनके बुढ़ापे में संतान उनकी देखभाल करेगी। यह परस्पर प्रेम और विश्वास ही परिवार का मूल आधार है। एक दूसरे से की जाने वाली यह अपेक्षा अपने कर्तव्यों के प्रतिफल की चाह नहीं है, बल्कि वह विश्वास है जो एक दूसरे के प्रति प्रेम से उत्पन्न हुआ है।

विश्व के अधिकांश भागों में सम्मिलित रूप से निवास करने वाले रक्त संबंधियों को परिवार कहा जाता है जिसमें विवाह और परिवार की स्वीकृति प्राप्त गोद लिए व्यक्ति भी सम्मिलित होते हैं। परिवार सामाजिक, सांस्कृतिक व धार्मिक गतिविधियों एवं संगठनों की इकाई माना जाता है। परिवार की यह अवधारणा परिवार के स्थूल रूप को दर्शाती है। वस्तुतः परिवार इससे कहीं बढ़कर है। परिवार एक होने का वह भाव है जहां एक की सफलता सभी की सफलता है और एक का पतन सभी का पतन है। यहां व्यष्टि नहीं समष्टि प्रधान है, और इसी समष्टि के उत्थान में, उसके सुख में व्यक्ति का सुख समाहित है। स्वयं को मिटाकर अपने प्रिय जनों के साथ एक नई पहचान बनाना ही परिवार बनाना है।

कभी-कभी एक साथ काम करने वालों में आपसी प्रेम, विश्वास और संरक्षण का भाव सामान्य से अधिक हो जाता है तो वे भी स्वयं को परिवार कहने लगते हैं। जैसे, सहारा परिवार, संघ परिवार। इनका आपस में रक्त संबंध भले ही न हो किंतु एक होने का भाव इन्हें जोड़े रखता है। एक उद्देश्य की प्राप्ति के लिए कार्य करते हुए एक दूसरे की सहायता कर आगे बढ़ने की भावना इन्हें एक दूसरे से जोड़ती है। इसी सहयोग व विश्वास से प्रेम का प्रस्फुटन होता है। जिन संस्थाओं में यह भावना बलवती होती है वहां कार्य का एक सौहार्दपूर्ण वातावरण निर्मित होता है। ऐसे वातावरण में कार्य करने वाले तनावमुक्त होकर कार्य करते हैं और दूसरों की अपेक्षा अधिक सफल होते हैं।

इसी प्रकार एक ही आवासीय परिसर में रहने वाले विभिन्न परिवार समूह आपसी संबंध अच्छा होने पर स्वयं को उस आवासीय परिसर की एक इकाई मानने लगते हैं और उस आवासीय परिसर को एक वृहद परिवार। जैसे

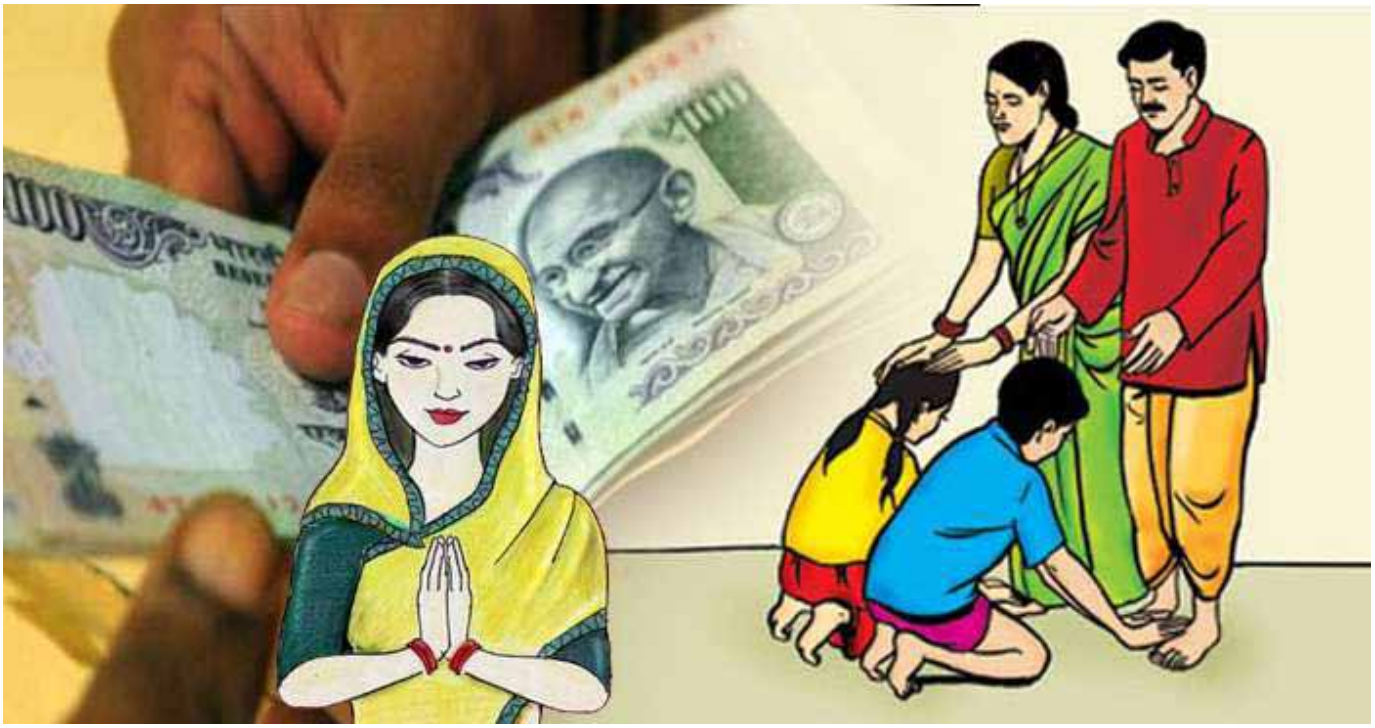

गुलमोहर आवासीय परिसर में रहने वाले अलग अलग परिवार स्वयं को गुलमोहर परिवार का हिस्सा मान लें व सुभद्रा आवासीय परिसर के परिवार स्वयं को सुभद्रा परिवार का सदस्य कहने लग जाएं। परिवार का एक सदस्य होने के नाते वे एक दूसरे के प्रति अपनी जिम्मेवारी पड़ोसी होने की जिम्मेवारी से अधिक निभाते हैं। एक का दुःख साझा दुःख होता है। त्यौहारों को सामूहिक रूप से मनाकर ही वे आनंदित होते हैं।

परिवार की आधारशिला ही प्रेम है यह इस तथ्य से सिद्ध होता है कि आपसी प्रेम और परिवार के आकार में समानुपातिक संबंध है। जिस समाज में आपसी प्रेम अधिक है वहां परिवार का आकार बड़ा होगा। कुछ दशकों पहले हमारे देश में भी परिवार का आकार बड़ा होता था। यहां तक कि पूरा गांव एक परिवार होता था। पिता के सभी हमउम्र चाचा या काका कहे जाते थे, दादा के सभी हमउम्र दादा कहे जाते थे। समाज में आपसी प्रेम, विश्वास और भाईचारा था। गांव में किसी की भी बेटी पूरे गांव की बेटी होती थी। दामाद की खातिरदारी पूरा गांव करता था। एक गांव के युवक-युवती भाई-बहन माने जाते थे। यही कारण है कि एक ही गांव में वैवाहिक संबंध वर्जित थे। गांव की औरतें मिलकर आचार, पापड और बडियां बनाती थीं। पुरुष चौपाल पर बैठ देश की समस्याओं के साथ-साथ अपने घर-परिवार की समस्याओं पर भी बेफिक्र चर्चा करते थे। अपने घर की समस्याओं का पिटारा सबके सामने खोलते हुए किसी प्रकार की शर्म या झिझक नहीं होती थी क्योंकि सभी एक परिवार का हिस्सा थे। समस्याओं का समाधान भी सामूहिक रूप से ढूंढा जाता था। एक दूसरे से छुपाव, दुराव जैसी कोई चीज ही नहीं थी। और यही कारण है कि तनाव भी नहीं था।

भौतिकवाद के प्रभाव और एक दूसरे से आगे बढ़ने की होड़ में प्रेम का स्थान ईर्ष्या और दुर्भावना ने ले लिया है। एक दूसरे का हाथ पकड़ आगे बढ़ने की जगह लोगों ने दूसरे को गिराकर आगे बढ़ना सीख लिया है। संपन्न दिखने की चाह में गरीब पड़ोसी और रिश्तेदार से दूरी बनाते-बनाते न जाने कब अपने नाते-रिश्तेदारों और यहां तक कि माता-पिता और भाई-बहनों से भी दूरी बना ली है। परिवार का आकार वसुधैव कुटुंबकम् की अवधारणा से सिकुड़ते-सिमटते पति पत्नी और बच्चों तक ही सीमित हो गया। हमने प्रेम का गला घोंट केवल प्रेम को नहीं मारा बल्कि परिवार को भी मार दिया है। परिवार के साथ साथ हमारे जीवन से सुरक्षा का भाव, सहयोग की भावना, उत्तरदायित्व का बोध सब कुछ तिरोहित हो गया है। हमारे आसपास अवसाद, तनाव और अकेलेपन ने अपना घर बना लिया है।

प्रेम का लोप न केवल परिवार के छोटे आकार में परिलक्षित हुआ है बल्कि इसके अभाव में विभिन्न प्रकार के मानसिक रोग और असुरक्षा का भाव भी विकसित हुए हैं। बच्चे अपने सामाजिक और धार्मिक संस्कारों से अनभिज्ञ हो गए हैं। यह ठीक वैसा ही है जैसे किसी वृक्ष की टहनियां और पत्तियां तो खूब विकसित हों लेकिन जडें न पनप पाएं। ऐसे वृक्ष को हवा का एक झोंका भी आसानी से धराशायी कर सकता है।

प्रेम सौहार्द व अपनत्व से सिंचित होकर ही मानव का व्यक्तित्व पल्लवित होता है। यह प्रेम, सौहार्द व अपनत्व परिवार से ही प्राप्त हो सकता है। प्रेम से परिवार बनता है और परिवार से प्रेम मिलता है। यह दोनों एक ही सिक्के के दो पहलू हैं। एक को खोकर दूसरे को नहीं पाया जा सकता।

●●●

भारतीय-परिवार का ढाँचा कभी बुलंदी को छूएगा!

रतन मालवीय

इंसान भगवान की सर्व-सुंदर कृति है। इस संसार में परिवार के रूप में ही हर जीवधारी रहता है, अतः परिवार समाज की सबसे पहली इकाई है। आत्मा से युक्त जितने भी प्राणी हैं सब अपने परिवार के साथ रहते हैं।

सबसे पहले एक परिवार, फ़िर जब परिवार बढ़ता है तो कुनबा बनता है फिर वही खानदान और बिरादरी के रूप में बढ़ता जाता है। तथ्यात्मक रूप में ऐसा माना जाता है कि इस संसार की उत्पत्ति मनु और शतरूपा से हुई है। आगे उदार रूप में हमारे देश में वसुधैव कुटुंबकम् का प्रचलन है। इस बात को एक श्लोक के द्वारा बताया गया है -

अयं निजः परो वेति गणना लघु चेतसाम्।
उदार चरितानाम् तु वसुधैव कुटुंबकम्।।

इतना ही नहीं, हमारे परिवार में मेहमानों को भगवान् का ही दर्जा दिया जाता है- 'अतिथि देवो भव'! अर्थात् अतिथि भगवान तुल्य माना जाता है। कोई यदि किसी के घर जाता है, तो उसके सम्मान में कोई कसर नहीं छोड़ा जाता है। वर्तमान परिवार की विडंबना है कि आजकल के फैशन परस्त लोग अपनी सभ्यता और संस्कृति को छोड़कर पाश्चात्य देशों की सभ्यता और संस्कृति के अनुसरण में लगे हैं,

“

वर्तमान परिवार की विडंबना है कि आजकल के फैशन परस्त लोग अपनी सभ्यता और संस्कृति को छोड़कर पाश्चात्य देशों की सभ्यता और संस्कृति के अनुसरण में लगे हैं, जबकि पाश्चात्य देश के निवासी हमारी सभ्यता संस्कृति एवं धर्म को अपनाने में लगे हैं। दूसरे शब्दों में आज का समाज दूसरों की नकल करने में अंधी दौड़ लगाए है।

जबकि पाश्चात्य देश के निवासी हमारी सभ्यता संस्कृति एवं धर्म को अपनाने में लगे हैं। दूसरे शब्दों में आज का समाज दूसरों की नकल करने में अंधी दौड़ लगाए है। बहुत अधिक समय तक यह सब नहीं चलने वाला है। मेरे अपने विचार से शायद 3-4 पीढ़ी के बाद फिर हमारा देश अपनी सभ्यता और संस्कृति को पुनः ऊंचाई पर लाएगा ।

आज के समय में परिवार के नाम पर समाज में केवल पति-पत्नी और बच्चे ही रह गए हैं। कोई भी दंपती अपने माता-पिता को साथ नहीं रखना चाहता। इसको प्रत्यक्ष रूप से वृद्धआश्रम की संख्या की बढ़ोत्तरी से देखा जा सकता है। वही जो अपने मां-बाप को अपने सर माथे पर रखते हैं, वे भी शादी के बाद साथ में रहना नहीं पसंद करते। भविष्य में यही अपने बच्चों की देखभाल के लिए आया रखते हैं या किसी ऐसी जगह तलाशते हैं जहां बच्चों की सुरक्षा के साथ देखभाल हो सके। इन सब बातों के पीछे कहीं न कहीं परिवार के माता-पिता ही दोषी हैं, जिन्होंने अपने बच्चों को सहनशक्ति नहीं सिखाई। हाँ, इसके पीछे एकल परिवार होना भी कारण है। इसके अलावा कहीं तो अति शिक्षित होना और कहीं पर अशिक्षित होना भी कारण है। इसी बात को एक श्लोक में इस प्रकार भी कहा गया है -

माता शत्रुः पिता वैरी येन बालो न पाठितः।
न शोभते सभा मध्ये हंस मध्ये बको यथा ।।

इस प्रकार से परिवार और समाज को सुधारने के उद्देश्य से बहुत सारे महापुरुषों ने इस संसार में आकर समाज सुधारक के रूप में काम किया है। इसी संदर्भ में स्वामी विवेकानंद जी की अति उत्तम लाइन प्रेषित हैः-

'I am not handsome but I can give my hand to someone who needs help। Beauty is in heart not on face'

वर्तमान समय का सच यह भी है कि आज लोग दिल नहीं, रूप और दौलत को देखते हैं। पर हर इंसान के अंदर कहीं न कहीं कुछ अच्छाई अवश्य है। फ़िर भी, सकारात्मक विचारधारा के साथ हम यही आशा और उम्मीद रख सकते हैं कि आज नहीं तो कल हमारा देश घर परिवार और समाज फिर से अपनी ऊंची बुलंदियों पर पहुँचेगा।

●●●

लघु कथा

भटकता बचपन

डॉ बिपिन पाण्डेय

नव्या ज्यों ही ट्यूशन पढ़कर अपने घर के दरवाज़े पर पहुँची,पड़ोस में रहने वाला चार साल का बच्चा-प्रखर दौड़ता हुआ उसके पास आया और बोला –

दीदी, एक बात बताऊँ ? इससे पहले वह कुछ बोल पाती, प्रखर कहने लगा- आज मेरे स्कूल की छुट्टी थी। मैंने आज डोरेमान देखा,बहुत मज़ा आया। मैंने ड्राइंग भी की। ये देखो,कैसी है?

नव्या जो कि खुद लगभग चौदह-पंद्रह साल की थी, कुछ समझ नहीं पा रही थी कि वह क्या कहे?

नव्या ने कहा- बहुत सुन्दर ड्राइंग है। इसका मतलब बहुत मज़े किए आज।

प्रखर ने प्रसन्नता व्यक्त करते हुए सिर हिलाया और मुस्कराता हुआ चला गया।नव्या घर आई और अपनी माँ से कहने लगी-मम्मी, प्रखर क्यों आया था ? मैंने तो इसे बुलाया नहीं था। आया और अपनी बात बताने लगा।

नव्या की मम्मी ने उसे समझाया, बेटा उसे अपने मन की बात कहनी थी, उसे कोई मिला नहीं होगा , जिससे अपने मन की बात कह सके।

उसकी माँ और पापा तो काम पर गए होंगे। दादी बूढ़ी हैं, बीमार रहती हैं, दवा खाकर सो गई होंगी।आस-पास कोई उसकी उम्र का बच्चा भी नहीं है, जिसके साथ खेल सके और अपनी बात कह सके।

नव्या सोचने लगी, भौतिक विकास की दौड़ में बचपन कितना निरीह हो गया है।

●●●

नारी है परिवार की धुरी!

रश्मि मालवीय

परिवार अर्थात वह स्थान जहाँ जन्म से रिश्ते निर्धारित होते हैं। एक शिशु का जन्म कब होगा, कहाँ होगा और किस रूप में होगा कौन जानता है? हम जानते ही हैं कि भारत एक कृषि प्रधान देश रहा है। किन्चित इस वजह से भी सयुंक्त परिवार अस्तित्व में रहे हैं। अब स्तिथियाँ बदली हैं। काम के लिए पलायन हुआ है तो परिवार भी एकल हो गए। इन दोनों ही स्थितियों में अब तक परिवार की डोर में एक सिरा बाहर से आकर जुड़ता है, डोर को मज़बूती देता है। इस सिरे को हम नारी के नाम से सम्बोधित करते हैं।

हर सच का एक दूसरा पहलू भी तो होता है जब कदम देहरी लाँघ रहे थे, तब एक कदम बाहर हुआ तब भी एक कदम अंदर रहा। अंदर का संसार भी उसका आँचल थामे रहा। इस अंदर बाहर की जद्दोजहद में परिवार का स्वरूप बदला। कहीं बात समझी गई, तो कहीं नहीं ।बच्चे नौकरों के भरोसे रहे, तो संस्कार पीछे छूटते गये। अच्छा- बुरा समझने की लियाकत ख़त्म हुई, तो असर समाज पर भी पड़ा। परिवार की धुरी पर ज़िम्मेदारी का बोझ बढ़ा ,उसके काँधे बोझ सहन नही कर सके, तो कई चीजें पीछे छूटने लगी।

'नारी' अर्थात धुरी, परिवार की धुरी। वह नए परिवार में जुड़ती है, उसे पोषित करती है, उसकी संरचना में रेशा-रेशा गूँधती है,सन्तति को जन्म देकर विश्व रचना में योगदान देती है।

कहने की जरूरत नहीं इस धुरी को अपनी धुरी पर घूमते हुए बहुत कुछ गवाँना पड़ा। जन्म देने वाले माता-पिता से लेकर घर आंगन, नाम, पहचान और कई बार अपना आत्मसम्मान भी। सदियाँ बीत गई उन्हें अपने को खोए हुए यहां तक कि अब उन्हें अपने सपने अपने रास्ते तो क्या वो खुद हैं- यह भी याद नहीं। लेकिन वक़्त को करवट बदलना ही था, पहिये को घूमना ही था वक़्त बदला और नारी कि सोच और उसका विस्तार भी बदल गया। घूंघट छोड़ा, कदम निकले देहरी से, उसने आसमान का स्वाद चखा,बारिश में नहाने का सुख लिया, धूप में जली भी तो पेड़ के नीचे खड़ी होकर बची भी। जब यात्रा करने लगी, तो देखा हर जगह वह एक जैसी ही है। कहीं बदलाव है भी तो नाम मात्र । जिस स्टेशन पर भी उतरी, उसने आज़ादी को बीज बो दिया। अब वह बीज पेड़ है । ज़ुबान से शब्द निकलते हैं, सिसकियां नहीं । अब हृदय में आशाएं पलने लगी हैं, घुटन नहीं। युग अपनी गवाही उसी समय नहीं देता (आने वाला समय अपने पिछले समय का लेखा जोखा लिखता है। बही-खाते में अब कई नारियाँ अपने नाम दर्ज करवा चुकीं.. और जो नहीं भी लिख सकी वह बेनाम नहीं रह गई । हर सच का एक दूसरा पहलू भी तो होता है जब कदम देहरी लाँघ रहे थे, तब एक कदम बाहर हुआ तब भी एक कदम अंदर रहा। अंदर का संसार भी उसका आँचल थामे रहा। इस अंदर बाहर की जद्दोजहद में परिवार का स्वरूप बदला। कहीं बात समझी गई, तो कहीं नहीं ।बच्चे नौकरों के भरोसे रहे, तो संस्कार पीछे छूटते गये। अच्छा- बुरा समझने की लियाकत ख़त्म हुई, तो असर समाज पर भी पड़ा। परिवार की धुरी पर ज़िम्मेदारी का बोझ बढ़ा ,उसके काँधे बोझ सहन नही कर सके, तो कई चीजें पीछे छूटने लगी। बड़े बुजुर्ग नहीं रहे ,स्वतंत्रता स्वछंदता में कब बदल गई कोई जान ही नही पाया। समाज और परिवार एक दूसरे के विलोम नहीं हैं पर्याय हैं। जो परिवार का चेहरा होगा वही समाज के दर्पण में दिखेगा। धुरी को अपनी पहचान खोनी नही है, लेकिन अपनी धुरी पर वापस आना है। समाज का दर्पण कह रहा है वापस जड़ों में जाने की जरूरत है। जब कदम देहरी से निकले, तो पीछे छत्र-छाया रहे, जिससे आने वाला भविष्य पनपे न कि मुरझा जाए । परिवार में हर सदस्य की अपनी जगह है, तो जिम्मेदारी भी। बाहरी दुनिया का प्रवेश जितना कम हो अंदर की दुनिया में शायद अच्छा हो । चाहे वह बाहर का खाना हो या सोशल मीडिया से झाँकते झूठे चेहरे। बात करने कि जगह अगर कहीं है तो परिवार में ही है। यहीं खुशियाँ बढ़ेंगी और दुख घटेंगे। सामाज के आईने से अनाथालय और वृद्धाश्रम कम करने हैं तो परिवार और उसकी धुरी को वापस अपनी धुरी पर आना होगा।

(आलेख- रश्मि मालवीय, पुस्तकाध्यक्ष, इंदौर)

परिवार और सोलह संस्कार

डॉ० लालमणि तिवारी

व्यक्ति निर्माण की पहली पाठशाला परिवार है। परिवार में इस पाठाशाला का पारम्परिक संचालन संस्कारों के माध्यम से होता है। इन्हीं संस्कारों के साथ पोषित होता शिशु जब समाज के कर्मक्षेत्र में आता है तब तक उसको परिवार से बाहर की सत्ता से समायोजन और संतुलन का ज्ञान हो चुका होता है। शिशु से सम्पूर्ण मानव के निर्माण की प्रक्रिया के लिए सनातन संस्कृति में सोलह संस्कारों को व्यवस्थित किया गया है। परिवार में संपन्न होने वाले ये संस्कार मानव को पूर्ण मानव बनाने का दायित्व निभाते हैं।

संस्कारों के माध्यम से शिशु जब मनुष्य के रूप में अपनी विकास यात्रा तय करता है तो संस्कारों की ऊर्जा उसे उसके उस धर्म से जोड़ती है जिसके लिये सृष्टि में मनुष्य के रूप में उसका आगमन हुआ है। इन संस्कारों के माध्यम से मनुष्य बनने की इस प्रक्रिया को सनातन संस्कृति में अत्यंत महत्वपूर्ण माना गया है।

लेखक गीता प्रेस, गोरखपुर से सम्बद्ध हैं।

गौतम स्मृति में चालीस प्रकार के संस्कारों का उल्लेख है। महर्षि अंगिरा ने इनका अंतर्भाव पच्चीस संस्कारों में किया। व्यास स्मृति में सोलह संस्कारों का वर्णन हुआ है। धर्म शास्त्रों में भी मुख्य रूप से सोलह संस्कारों की व्याख्या की गई है।

गर्भाधान

प्रथम कर्त्तव्य के रूप में इस संस्कार को मान्यता दी गई है। जीवन का प्रमुख उद्देश्य श्रेष्ठ सन्तानोत्पत्ति है। उत्तम संतति की इच्छा रखनेवाले माता-पिता को गर्भाधान से पूर्व अपने तन और मन की पवित्रता के लिये यह संस्कार करना चाहिए।

निषेकाद बैजिकं चैनो गार्भिकं चापमृज्यते।
क्षेत्रसंस्कारसिद्धिश्च गर्भाधानफलं स्मृतम्॥

विधिपूर्वक संस्कार से युक्त गर्भाधान से अच्छी और सुयोग्य संतान उत्पन्न होती है। इस संस्कार से वीर्यसंबधी पाप का नाश होता है, दोष का मार्जन तथा क्षेत्र का संस्कार होता है। यही गर्भाधान-संस्कार का फल है।

गर्भाधान के समय स्त्री-पुरुष जिस भाव से भावित होते हैं, उसका प्रभाव उनके रज-वीर्य में भी पड़ता है। अतः उस रज-वीर्यजन्य संतान में माता-पिता के वे भाव स्वतः ही प्रकट हो जाते है।

आहाराचारचेष्टाभिर्यादृशोभिः समन्वितौ।
स्त्रीपुंसौ समुपेयातां तयोः पुतोडपि तादृशः॥

स्त्री और पुरुष जैसे आहार-व्यवहार तथा

चेष्टा से संयुक्त होकर परस्पर समागम करते हैं, उनका पुत्र भी वैसे ही स्वभाव का होता है।

सन्तानार्थी पुरुष ऋतुकाल में ही स्त्री का समागम करे, पर-स्त्री का सदा त्याग रखे। स्त्रियों का स्वाभाविक ऋतुकाल रजो-दर्शन से 16 रात्रि पर्यन्त है। इसमे प्रथम चार रात्रियों में तो स्त्री-पुरुष सम्बन्ध होना ही नहीं चाहिए, ऐसा समागम व्यर्थ ही नहीं होता अपितु महा रोग कारक भी है।

इसी प्रकार 11 वीं और तेरहवी रात्रि भी गर्भाधान के लिए वर्जित है। शेष दस रात्रियां ठीक है। इनमें भी जो पूर्णमासी, अमावस्या, चदुर्दशी व अष्टमी (पर्व) रात्रि हो उसमें भी स्त्री-समागम से बचा रहे। छठी, आठवी दशवी, बारहवी, चौदहवी और सोलहवी ये छः रात्रि पुत्र चाहने वाले के लिए तथा पाचंवी, सातवीं, नवीं और पन्द्रहवीं-ये चार रात्रियां कन्या की इच्छा से किये गये गर्भाधान के लिए उत्तम मानी गई है।

ऋतुस्नान के बाद स्त्री जिस प्रकार के पुरुष का दर्शन करती है, वैसा ही पुत्र उत्पन्न होता है। अतः जो स्त्री चाहती है कि मेरे पति के समान गुण वाला या अभिमन्यु जैसा वीर, ध्रुव जैसा भक्त, जनक जैसा आत्मज्ञानी, कर्ण जैसा दानी पुत्र हो, तो उसे चाहिए की ऋतुकाल के चौथे दिन स्नान आदि से पवित्र होकर अपने आदर्श रुप इन महापुरुषों के चित्रों का दर्शन तथा सात्त्विक भावों से उनका चिंतन करें और इसी सात्त्विकभावों में योग्य रात्रि को गर्भाधान करावे। रात्रि के तृतीय प्रहर (12 से 3 बजे) की संतान हरिभक्त और धर्मपरायण होती है।

संतानप्राप्ति के उद्देश्य से किए जाने वाले समागम के लिए अनेक वर्जनाएं भी निर्धारित की गई है, जैसे गंदी या मलिन-अवस्था में, मासिक धर्म के समय, प्रातः या सायं की संधिवेला में अथवा चिंता, भय, क्रोध आदि मनोविकारों के पैदा होने पर गर्भाधान नहीं करना चाहिए।

दिन में गर्भाधान करने से उत्पन्न संतान दुराचारी और अधम होती है। दिति के गर्भ से हिरण्यकशिपु जैसा महादानव इसलिए उत्पन्न हुआ था कि उसने आग्रहपूर्वक अपने स्वामी कश्यप के द्धारा संध्याकाल में गर्भाधान करवाया था। श्राद्ध के दिनों, पर्वों व प्रदोष-काल में भी समागम करना शास्त्रों में वर्जित है।

पुंसवन

गर्भस्थ शिशु के मानसिक विकास की दृष्टि से यह संस्कार उपयोगी समझा जाता है। गर्भाधान के दूसरे या तीसरे महीने में इस संस्कार को करने का विधान है। गर्भस्थ शिशु से सम्बन्धित इस संस्कार को शुभ नक्षत्र में सम्पन्न किया जाता है। विशेष तिथि एवं ग्रहों की गणना के आधार पर ही गर्भधान करना उचित माना गया है। पुंसवन संस्कार का प्रयोजन स्वस्थ एवं उत्तम संतति को जन्म देना है। मनीषियों ने सन्तानोत्कर्ष के उद्देश्य से किये जाने वाले इस संस्कार को अनिवार्य माना है। गर्भधारण के पश्चात संभोग निषिद्ध है।

पुंसवन संस्कार के दो प्रमुख लाभ : पुत्र प्राप्ति और स्वस्थ, सुंदर गुणवान संतान है। गर्भ ठहर जाने पर भावी माता के आहार, आचार, व्यवहार, चिंतन, भाव सभी को उत्तम और संतुलित बनाने का प्रयास किया जाय। शारीरिक, मानसिक दृष्टि से परिपक्व हो जाने के बाद, समाज को श्रेष्ठ, तेजस्वी नई पीढ़ी देने के संकल्प के साथ ही संतान पैदा करने की पहल करें। उसके लिए अनुकूल वातवरण भी निर्मित किया जाता है। गर्भ के तीसरे माह में विधिवत पुंसवन संस्कार सम्पन्न कराया जाता है, क्योंकि इस समय तक गर्भस्थ शिशु के विचार तंत्र का विकास प्रारंभ हो जाता है। वेद मंत्रों, यज्ञीय वातावरण एवं संस्कार सूत्रों की प्रेरणाओं से शिशु के मानस पर तो श्रेष्ठ प्रभाव पड़ता ही है, अभिभावकों और परिजनों को भी यह प्रेरणा मिलती है कि भावी माँ के लिए श्रेष्ठ मनःस्थिति और परिस्थितियाँ कैसे विकसित की जाए।

क्रिया और भावना : गर्भ पूजन के लिए गर्भिणी के घर परिवार के सभी वयस्क परिजनों के हाथ में अक्षत, पुष्प आदि दिये जाएँ। निम्न मंत्रोचारण किया जाये :

ॐ सुपर्णोऽसि गरुत्माँस्त्रिवृत्ते शिरो,
गायत्रं चक्षुबर्रृहद्रथन्तरे पक्षौ।
स्तोमऽआत्मा छन्दा स्यङ्गानि यजूषि नाम।
साम ते तनूर्वामदेव्यं, यज्ञायज्ञियं पुच्छं धिष्ण्याः शफाः।
सुपर्णोऽसि गरुत्मान दिवं गच्छ स्वःपत॥

मंत्र समाप्ति पर अक्षत, पुष्प एक तश्तरी में एकत्रित करके गर्भिणी को दिया जाए। वह उसे पेट से स्पर्श करके रख दे। भावना की जाए, गर्भस्थ शिशु को सद्भाव और देव अनुग्रह का लाभ देने के लिए पूजन किया जा रहा है। गर्भिणी उसे स्वीकार करके गर्भ को वह लाभ पहुँचाने में सहयोग कर रही है।

सीमन्तोन्नयन

सीमन्तोन्नयन का अभिप्राय है सौभाग्य संपन्न होना। गर्भपात रोकने के साथ-साथ गर्भस्थ शिशु एवं उसकी माता की रक्षा करना भी इस संस्कार का मुख्य उद्देश्य है। इस संस्कार के माध्यम से गर्भिणी स्त्री का मन प्रसन्न रखने के लिये सौभाग्यवती स्त्रियां गर्भवती की माँग भरती हैं। यह संस्कार गर्भ धारण के छठे अथवा आठवें महीने में होता है।

प्रसव उपरान्त क्रियाएँ-जातकर्म :

नवजात शिशु के नालच्छेदन से पूर्व इस संस्कार को करने का विधान है। इस दैवी जगत् से प्रत्यक्ष सम्पर्क में आने वाले बालक को मेधा, बल एवं दीर्घायु के लिये स्वर्ण खण्ड से मधु एवं घृत चटाया जाता है। दो बूंद घी तथा छह बूंद शहद का सम्मिश्रण अभिमंत्रित कर चटाने के बाद पिता यज्ञ करता है , बालक के बुद्धिमान, बलवान, स्वस्थ एवं दीर्घ जीवी होने की प्रार्थना करता है। इसके बाद माता बालक को स्तनपान कराती है।यह संस्कार विशेष मन्त्रों एवं विधि से किया जाता है।

शिशु के विश्व प्रवेश पर उसके ओजमय अभिनन्दन का यह संस्कार है। इसमें सन्तान की अबोध अवस्था में भी उस पर संस्कार डालने की चेष्टा की जाती है। माता से शारीरिक सम्बन्ध टूटने पर उसके मुख नाकादि को स्वच्छ करना ताकि वह श्वास ले सके तथा दूध पी सके।

यह सफाई सधी हुई दाई या नर्स द्वारा किया जाता है। सैंधव नमक घी में मिलाकर देने से नाक और गला साफ हो जाते हैं। बच्चे की त्वचा को साफ करने के लिए साबुन या बेसन और दही को मिलाकर उबटन की तरह प्रयोग किया जाता है।

स्नान के लिए गुनगुने पानी का प्रयोग होता है। चरक के अनुसार कान को साफ करके वे शब्द सुन सकें इसलिए कान के पास पत्थरों को बजाना चाहिए।

बच्चे के सिर पर घी में डूबोया हुआ फाया रखते हैं क्योंकि तालु जहां पर सिर की तीन अस्थियां दो पासे की ओर एक माथे से मिलती है वहां पर जन्मजात बच्चे में एक पतली झिल्ली होती है।

इस तालु को दृढ़ बनाने इसकी रक्षा करने इसे पोषण दिलाने के लिए ये आवश्यक होता है। इस प्रयोग से बच्चे को सर्दी जुकाम आदि नहीं सताते। जन्म पश्चात सम शीतोष्ण वातावरण में शिशु प्रथम श्वास ले।

शिशु का प्रथम श्वास लेना अति महत्वपूर्ण घटना है। गर्भ में जन्म पूर्व शिशु के फफ्फुस जल से भारी होते हैं। प्रथम श्वास लेते समय ही वे फैलते हैं और जल से हलके होते हैं। इस समय का श्वसन-प्रश्वसन शुद्ध समशीतोष्ण वातायन में हो।

शिशु के तन को कोमल वस्त्र या रुई से सावधानीपूर्वक साफ-सुथरा कर गोद में लेकर देवयज्ञ करके स्वर्ण शलाका को सममात्रा मिश्रित घी-षहद में डुबोकर उसकी जिह्वा पर ब्रह्म नाम लिखकर उसके वाक देवता जागृत करे। इसके साथ उसके दाहिने तथा बाएं कान में 'वेदोऽसि' कहा जाता है। अर्थात तू ज्ञानवाला प्राणी है, अज्ञानी नहीं है। तेरा नाम ब्रह्मज्ञान है। इसके पष्चात सोने की शलाका से उसे मधु-घृत चटाया जाता है और उसके अन्य बीज देवताओं में शब्द उच्चारण द्वारा शतवर्ष स्वस्थ अदीन ब्रह्म निकटतम जीने की भावना भरें, यह कामना की जाती है।

शिशु के दाएं तथा बाएं कान में क्रमषः शब्दोच्चार करते सविता, सरस्वती, इड़ा, पिंगला, सुषुम्णा, मेधा, अग्नि, वनस्पति, सोम, देव, ऋषि, पितर, यज्ञ, समुद्र, समग्र व्यवस्था द्वारा आयुवृद्धि, स्वस्थता प्राप्ति भावना भरें, यह कामना की जाती है।

तत्पश्चात शिशु के कन्धों को अपनत्व भाव स्पर्श करके उसके लिए उत्तम दिवसों, ऐश्वर्य, दक्षता, वाक का भाव रखते उसके ब्रह्मचर्य-गृहस्थ-वानप्रस्थ (संन्यास सहित) तथा बल-पराक्रमयुक्त इन्द्रियों सहित और विद्या-शिक्षा-परोपकार सहित (आयुष–त्रि) होने की भावना का शब्दोच्चार करें।

इसी के साथ प्रसूता पत्नी के अंगों का सुवासित जल से मार्जन करता परिशुद्धता ऋत-श्रृत भाव उच्चारे।

इसके पश्चात शिशु को कः, कतरः, कतमः याने आनन्द, आनन्दतर, आनन्दतम भाव से सशब्द आशीर्वाद देकर, अपनत्व भावना भरा उसके अंग-हृदय सम-भाव अभिव्यक्त करते हुए उसके ज्ञानमय शतवर्ष जीने की कामना करता उसके शीष को सूंघे।

इतना करने के पश्चात पत्नी के दोनों स्तनों को पुष्पों द्वारा सुगन्धित जल से मार्जन कराकर दक्षिण, वाम स्तनों से शिशु को ऊर्जित, सरस, मधुमय प्रविष्ट कराने दुग्धपान कराए। इसके पष्चात वैदिक विद्वान पिता-माता सहित शिशु को दिव्य इन्द्रिय, दिव्य जीवन, स्वस्थ तन, व्यापक-अभय-उत्तम जीवन शतवर्षाधिक जीने का आषीर्वाद दें।

जातकर्म की अन्तिम प्रक्रिया जो शिशु के माता-पिता को करनी है वह है :- दस दिनों तक भात तथा सरसौं मिलाकर आहुतियां देना।

नामकरण

इस संस्कार का सनातन धर्म में बहुत अधिक महत्व है।जन्म के दस दिन तक अशौच (-सूतक) माना जाता है। इसलिये यह संस्कार ग्यारहवें दिन करने का विधान है। लेकिन अनेक कर्मकाण्डी विद्वान इस संस्कार को शुभ नक्षत्र अथवा शुभ दिन में करना उचित मानते हैं।यह व्यक्तित्व के विकास में सहायक होता है। महर्षि याज्ञवल्क्य

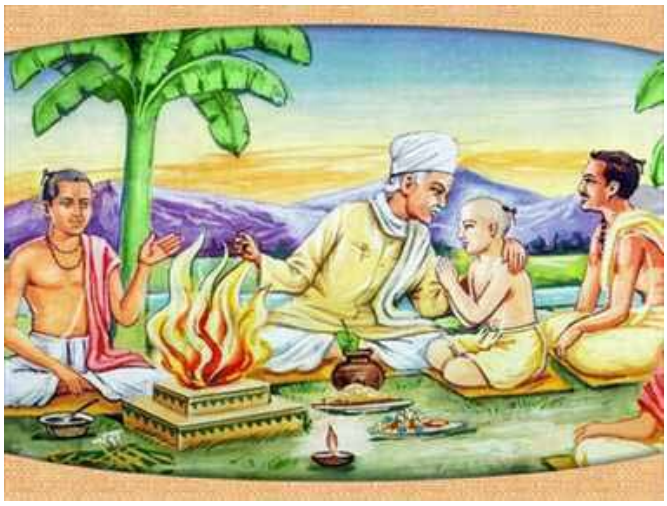

का भी यही मत है, लेकिन अनेक कर्म काण्डी विद्वान इस संस्कार को शुभ नक्षत्र अथवा शुभ दिन में करना उचित मानते हैं।मनीषियों ने नाम का प्रभाव इसलिये भी अधिक बताया है, क्योंकि यह व्यक्तित्व के विकास में भी सहायक है।कहा गया है राम से बड़ा राम का नाम। धर्म में ज्योतिष मनुष्य के भविष्य की रूपरेखा का ज्ञान-भान करा देता है। इस संस्कार का उदेश्य केवल शिशु को नाम देना भर नहीं है, अपितु उसे श्रेष्ठ तम सस्कारों सहित उच्च कोटि के मानव के रूप में विकसित करना है। नाम केवल सम्बोधन के लिए अपितु साभिप्राय होना चाहिये। सन्तान के जन्म के दिन से ग्यारहवें दिन, एक सौ एकवें दिन या दूसरे वर्ष के आरम्भ में जिस दिन जन्म हुआ हो यह संस्कार करना चाहिए। नाम ऐसा रक्खे कि श्रवण मात्र से मन में उदात्त भाव उत्पन्न करनेवाला हो।यह उच्चारण में सरल होना चाहिए। स्व-नाम श्रवण व्यक्ति अपने जीवन में अधिकतम बार करता है। अपना नाम उसकी सबसे बड़ी पहचान है। अपना नाम पढ़ना, सुनना हमेशा भला और उत्तम लगता है। नाम रखने में देवश्रव, दिवस ऋत या श्रेष्ठ श्रव भाव आना चाहिए। नाम हमेशा शुभ ही रखना चाहिए। शुभ तथा अर्थमय नाम ही सार्थक नाम है। कः कतमः सिद्धान्त नामकरण का आधार सिद्धान्त है। कौन हो ? सुख हो, ब्रह्मवत हो। कौन-तर हो ? ब्रह्मतर हो। कौन-तम हो ? ब्रह्मतम हो। ब्रह्म व्यापकता का नाम है। मानव का व्यापक रूप प्रजा है। अतिव्यापक रूप सु-प्रजा है। भौतिक व्यापकता क्रमशः पृथ्वी, अन्तरिक्ष, द्युलोक है। इन लोकों के आरोहण के भाव वेद मन्त्रों में हैं। वीर शरीर-आत्म-समाज बल से युक्त युद्ध कुशल व्यक्ति का नाम है। सुवीर प्रशस्त वीर का नाम है, जो परमात्म बल शरीर, आत्म, समाज में उतारने में कुशल होता है। सामाजिक आत्मिक निष्ठाओं (यमों) का पालन ही व्यक्ति को श्रेष्ठ ऐश्वर्य देता उसको सु-ऐश्वर्य दे परिपुष्ट करता है।

यदि सन्तान बालक है तो समाक्षरी अर्थात दो अथवा चार अक्षरोंयुक्त नाम रखा जाता है। और इनमें ग घ ङ ज झ ´ ड ढ ण द ध न ब भ म य र ल व इन अक्षरों का प्रयोग किया जाए। बालिका का नाम विषमाक्षर अथात एक, तीन या पांच अक्षरयुक्त होना चाहिए।

निष्क्रमण

निष्क्रमण का अर्थ है बाहर निकालना। तीन माह तक शिशु का शरीर बाहरी वातावरण यथा तेज धूप, तेज हवा आदि के अनुकूल नहीं होता है इसलिये प्रायः तीन मास तक उसे बहुत सावधानी से घर में रखना चाहिए। इसके बाद धीरे-धीरे उसे बाहरी वातावरण के संपर्क में आने देना चाहिए। इस संस्कार का तात्पर्य यही है कि शिशु समाज के सम्पर्क में आकर सामाजिक परिस्थितियों से अवगत हो। यह घर की अपेक्षा अधिक शुद्ध वातावरण में शिशु के भ्रमण की योजना है। बच्चे के शरीर तथा मन के विकास के लिए उसे घर के चार दीवारी से बाहर ताजी शुद्ध हवा एवं सूर्यप्रकाश का सेवन कराना इस संस्कार का उद्देश्य है।

गृह्यसूत्रों के अनुसार जन्म के बाद तीसरे शुक्ल पक्ष की तृतीया

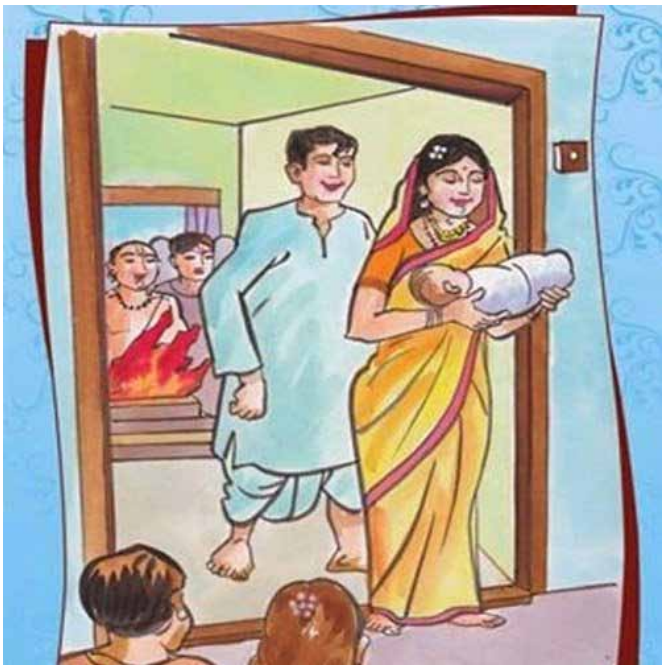

अर्थात चान्द्रमास की दृष्टि से जन्म के दो माह तीन दिन बाद अथवा जन्म के चौथे माह में यह संस्कार करे। दैवी जगत् से शिशु की प्रगाढ़ता बढ़े तथा ब्रह्माजी की सृष्टि से वह अच्छी तरह परिचित होकर दीर्घ काल तक धर्म और मर्यादा की रक्षा करते हुए इस लोक का भोग करे यही इस संस्कार का मुख्य उद्देश्य है। भगवान् भास्कर के तेज तथा चन्द्रमा की शीतलता से शिशु को अवगत कराना ही इसका उद्देश्य है। इसके पीछे मनीषियों की शिशु को तेजस्वी तथा विनम्र बनाने की परिकल्पना होगी। उस दिन देवी-देवताओं के दर्शन तथा उनसे शिशु के दीर्घ एवं यशस्वी जीवन के लिये आशीर्वाद ग्रहण किया जाता है। इस संस्कार का तात्पर्य यही है कि शिशु समाज के सम्पर्क में आकर सामाजिक परिस्थितियों से अवगत हो। हमारा शरीर पृथ्वी, जल, अग्नि, वायु और आकाश जिन्हें पंचभूत कहा जाता है, से बना है। इसलिए पिता इन देवताओं से बच्चे के कल्याण की प्रार्थना करते हैं।

इसमें शिशु को ब्रह्म द्वारा समाज में अनघ अर्थात पाप रहित करने की भावना तथा वेद द्वारा ज्ञान पूर्ण करने की भावना अभिव्यक्त करते माता-पिता यज्ञ करें। पति-पत्नी प्रेमपूर्वक शिशु के शत तथा शताधिक वर्ष तक समृद्ध, स्वस्थ, सामाजिक, आध्यात्मिक जीने की भावनामय होकर शिशु को सूर्य का दर्शन कराए।इसी प्रकार रात्रि में चन्द्रमा का दर्षन उपरोक्त भावना सहित कराए। यह संस्कार शिशु को आकाष, चन्द्र, सूर्य, तारे, वनस्पति आदि से परिचित कराने के लिए है।

आयुर्वेद के ग्रन्थों में कुमारागार, बालकों के वस्त्र, उसके खिलौने, उसकी रक्षा एवं पालनादि विषयों पर विस्तृत प्रकाश डाला गया है। कुमारागार ऐसा हो जिसमें अधिक हवा न आती हो किन्तु एक ही मार्ग से वायु प्रवेश हो। कुत्ते, हिंसक जन्तु, चूहे, मच्छर, आदि न आ सकें ऐसा पक्का मकान हो।जिसमें यथा स्थान जल, कूटने-

पीसने का स्थान, मल-मूत्र त्याग के स्थान, स्नानगृह, रसोई अलग-अलग हों। इस कुमारागार में रक्षा के समस्त साधन, मंगलकार्य, होमादि की सामग्री उपस्थित हों।

बच्चों के बिस्तर, आसन, बिछाने के वस्त्र कोमल, हल्के पवित्र, सुगन्धित होनें चाहिए। पसीना, मलमूत्र एवं जूं आदि से दूषित कपड़े हटा देवें। बरतन नए हों अन्यथा अच्छी प्रकार धोकर गुग्गुल, सरसो, हींग, वच, चोरक आदि का धुंआ देकर साफ करके सुखाकर काम में ले सकते हैं। बच्चों के खिलौने विचित्र प्रकार के बजनेवाले, देखने में सुन्दर एवं हल्के हों। वे नुकीले न हों, मुख में न आ सकनेवाले तथा प्राणहरण न करनेवाले होनें चाहिए।

अन्नप्राशन

शिशु जो अब तक पेय पदार्थो विशेषकर दूध पर आधारित था, अब अन्न जिसे शास्त्रों में प्राण कहा गया है उसको ग्रहण कर शारीरिक व मानसिक रूप से अपने को बलवान व प्रबुद्ध बनाए। तन और मन को सुदृढ़ बनाने में अन्न का सर्वाधिक योगदान है। शुद्ध, सात्विक एवं पौष्टिक आहार से ही तन स्वस्थ रहता है और स्वस्थ तन में ही स्वस्थ मन का निवास होता है। आहार शुद्ध होने पर ही अन्तःकरण शुद्ध होता है तथा मन, बुद्धि, आत्मा सबका पोषण होता है। अन्नप्राशन के लिये जन्म से छठे महीने को उपयुक्त माना है। छठे मास में शुभ नक्षत्र एवं शुभ दिन देखकर यह संस्कार करना चाहिए। खीर और मिठाई से शिशु के अन्नग्रहण को शुभ माना गया है। हमारे शास्त्रों में खीर को अमृत के समान माना गया है।

जब बालक के प्रायः दाँत निकल आते हैं, तब उसे उबला हुआ अन्न खिलाया जाता है। इसमें वह दही, मधु, घी, चावल आदि खिला सकते हैं। इस संस्कार के पूर्व शिशु अपने भोजन के लिए माता के दूध या गाय के दूध पर निर्भर रहता था। जब उसकी पाचन शक्ति बढ़ जाती है और उसके शरीर के विकास के लिए पौष्टिक तत्वों की आवश्यकता पड़ती है, तब बालक को प्रथम बार अन्न अथवा ठोस भोजन दिया जाता है।

मानव एवं शंख के अनुसार यह संस्कार जन्म से पाँचवें या छठे महीने में किया जाना चाहिए, किंतु मनु तथा याज्ञवलक्य दोनों ही इसके लिए 6-12 मास के बीच का समय उपयुक्त मानते हैं तथा साथ ही यह मत भी कि पुत्र शिशु का अन्नप्राशन सम मासों (6, 8, 10, 12) तथा कन्या शिशु का विषम मासों (5, 7, 9, 11) में किया जाना अधिक उपयुक्त होता है। जीवन में पहले पहल बालक को अन्न खिलाना इस संस्कार का उद्देश्य है। पारस्कर गृह्यसूत्र के अनुसार छठे माह में अन्नप्राशन संस्कार होना चाहिए। कमजोर पाचन शिशु का सातवे माह जन्म दिवस पर कराए।

इसमें ईश्वर प्रार्थना उपासना पश्चात शिशु के प्राण-अपानादि श्वसन व्यवस्था तथा पंचेन्द्रिय परिशुद्धि भावना का उच्चारण करता घृतमय भात पकाना तथा इसी भात से यज्ञ करने का विधान है।

इस यजन में माता-पिता तथा यजमान विश्व देवी प्रारूप की अवधारणा के साथ शिशु में वाज स्थापना (षक्तिकरण-ऊर्जाकरण) की भावना अभिव्यक्त करे। इसके पश्चात पुनः पंच श्वसन व्यवस्था तथा इन्द्रिय व्यवस्था की शुद्धि भावना पूर्वक भात से हवन करे। फिर शिशु को घृत, मधु, दही, सुगन्धि (अति बारीक पिसी इलायची आदि) मय भात रुचि अनुकूल सहजतापूर्वक खिलाए। इस संस्कार में अन्न के प्रति पकाने की सौम्य महक तथा हवन के एन्झाइम ग्रहण से क्रमषः संस्कारित अन्नभक्षण का अनुकूलन है। माता के दूध से पहले पहल शिशु को अन्न पर लाना हो तो मां के दूध की जगह गाय का दूध देना चाहिए। इस दूध को देने के लिए 150 मि।ग्रा। गाय के दूध में 60 मि।ग्रा। उबला पानी व एक चम्मच मीठा ड़ालकर शिशु को पिला दें। यह क्रम एक सप्ताह तक चलाकर दूसरे सप्ताह एक बार की जगह दो बार बाहर का दूध दें। तीसरे सप्ताह दो बार की जगह तीन बार बाहर का दूध दें, चौथे सप्ताह दोपहर दूध के स्थान पर सब्जी का रसा, थोड़ा दही, थोड़ा शहद, थोड़ा चावल दें। पांचवें सप्ताह दो समय के दूध के स्थान पर रसा, सब्जी, दही, शहद आदि बढ़ा दें। इस प्रकार बालक को धीरे-धीरे माता का दूध छुड़ाकर अन्न पर ले आने से बच्चे के पेट में कोई रोग होने की सम्भावना नहीं रहती। इस संस्कार पश्चात कालान्तर में दिवस-दिवस क्रमशः मूंगदाल, आलू, विभिन्न मौसमी सब्जियां, शकरकंद, गाजर, पालक, लौकी आदि (सभी भातवत अर्थात अति पकी- गलने की सीमा तक पकी) द्वारा भी शिशु का आहार अनुकूलन करना चाहिए। इस प्रकार व्यापक अनुकूलित अन्न खिलाने से शिशु अपने जीवन में सुभक्षण का आदि होता है तथा स्वस्थता प्राप्त करता है। इस संस्कार के बाद शिशु मितभुक्, हितभुक्, ऋतभुक्, श्रृतभुक होता है।

चूड़ा कर्म-मुण्डन संस्कार

बालक के पहले, तीसरे या पांचवें वर्ष में इस संस्कार को करने का विधान है। इस संस्कार के पीछे शुाचिता और बौद्धिक विकास

की भावना है। मुंडन संस्कार का अभिप्राय है कि जन्म के समय उत्पन्न अपवित्र बालों को हटाकर बालक को प्रखर बनाना है। नौ माह तक गर्भ में रहने के कारण शरीर के साथ-साथ उसके बालों भी अपवित्र-अशुद्ध हो जाते हैं। मुंडन संस्कार से इन दोषों का निवारण होता है।ज्योतिष शास्त्र के अनुसार इस संस्कार को शुभ मुहूर्त में करने का विधान है।

संस्कारों की प्रतिष्ठापना बालकपन में ही करके उन्हें सुसंस्कारी बनाया जाता है ताकि वेदारम्भ तथा क्रिया-कर्मों के लिए अधिकारी बन सके अर्थात वेद-वेदान्तों के पढ़ने तथा यज्ञादिक कार्यों में भाग ले सके। उसका मस्तिष्कीय विकास एवं सुरक्षा व्यवस्थित रूप से आरम्भ हो जाए, ऐसा विचार किया जाता है।चौरासी लाख योनियों में भ्रमण करते रहने के कारण आत्मा कितने ही ऐसे पाशविक संस्कार, विचार, मनोभाव अपने भीतर धारण किये रहती है, जो मानव जीवन में अनुपयुक्त एवं अवांछनीय होते हैं।मूल केशों को हटाकर मानवता वादी आदर्शो को प्रतिष्ठापित किये जाने हेतु यह कर्म आवश्यक है। ऐसा न होने पर यह मानना होगा कि आकृति मात्र मनुष्य की हुई-प्रवृत्ति पशु की।

रोग रहित उत्तम समृद्ध ब्रह्म गुणमय आयु तथा समृद्धि-भावना के कथन के साथ शिशु के प्रथम केशों के छेदन का विधान चूडाकर्म अर्थात मुण्डन संस्कार है। बच्चे के दांत छः सात मास की आयु से निकलना प्रारम्भ होकर ढाई-तीन वर्ष तक की आयु तक निकलते रहते हैं।

दांत निकलते समय सिर भारी हो जाता है, गर्म रहता है, सिर में दर्द होता है, मसूड़े सूझ जाते हैं, लार बहा करती है, दस्त लग जाते हैं, आंखे आ जाती हैं, बच्चा चिड़चिड़ा हो जाता है।दांतों के निकलने का भारी प्रभाव सिर पर पड़ता है। इसलिए सिर को हल्का और ठंडा रखने के लिए सिर पर बालों का बोझ उतार ड़ालना ही इस संस्कार का उदेश्य है।

शिशु गर्भ में होता है तभी उसके बाल आ जाते हैं, उन मलिन बालों को निकाल देने से, सिर की खुजली दाद आदि से रक्षा होती है। उसके उपरांत उगने वाले बाल मजबूत-घने होते हैं।

इस संस्कार द्वारा बालक में त्रिआयुष भरने की भावना भरी जाती है। त्रिआयुष एक व्यापक विज्ञान है।

(i) ज्ञान-कर्म-उपासना त्रिमय चार आश्रम त्रिआयुष हैं। **(ii)** शुद्धि, बल और पराक्रम त्रिआयुष हैं। **(iii)** शरीर, आत्मा और समाज त्रिआयुष हैं। **(iv)** विद्या, धर्म, परोपकार त्रिआयुष हैं। (v) शरीर-मन-बुद्धि, धी-चित्त-अहंकार आदि अर्थात आधिदैविक, आधिभौतिक, आध्यात्मिक इन त्रिताप से रहित करके त्रिसमृद्धमय जीवन जीना त्रिआयुष है।

विद्यारम्भ

विद्यारम्भ संस्कार के क्रम के बारे में मतभिन्नता है। कुछ का

मत है कि अन्नप्राशन के बाद विद्यारम्भ संस्कार होना चाहिये तो कुछ चूड़ाकर्म के बाद इस संस्कार को उपयुक्त मानते हैं चूड़ाकर्म के बाद ही विद्यारम्भ संस्कार उपयुक्त लगता है। विद्यारम्भ का अभिप्राय बालक को शिक्षा के प्रारम्भिक स्तर से परिचित कराना है। प्राचीन काल में जब गुरुकुल की परम्परा थी तो बालक को वेदाध्ययन के लिये भेजने से पहले घर में अक्षर बोध कराया जाता था। शुभ मुहूर्त में ही विद्यारम्भ संस्कार करना चाहिये। विद्यारंभ संस्कार का संबध उपनयन संस्कार की भांति गुरुकुल प्रथा से था, जब गुरुकुल का आचार्य बालक को यज्ञोपवीत धारण कराकर, वेदाध्ययन करता था। गुरुजनों से वेदों और उपनिषदों का अध्ययन कर तत्त्वज्ञान की प्राप्ति करना ही इस संस्कार का परम प्रयोजन है। जब बालक-बालिका का मस्तिष्क शिक्षा ग्रहण करने योग्य हो जाता है, तब यह संस्कार किया जाता है। आमतौर या 5 वर्ष का बच्चा इसके लिए उपयुक्त होता है। मंगल के देवता गणेश और कला की देवी सरस्वती को दमन करके उनसे प्रेरणा ग्रहण करने की मूल भावना इस संस्कार में निहित होती है। बालक विद्या देने वाले गुरु का पूर्ण श्रद्धा से अभिवादन व प्रणाम इसलिए करता है कि गुरु उसे एक श्रेष्ठ मानव बनाए। ज्ञानस्वरुप वेदों का विस्तृत अध्ययन करने के पूर्व मेधाजनन नामक एक उपांग-संस्कार करने का विधान भी शास्त्रों में वर्णित है। इसके करने से बालक में मेधा, प्रज्ञा, विद्या तथा श्रद्धा की अभिवृद्धि होती है। इससे वेदाध्ययन आदि में ना केवल सुविधा होती है, बल्कि विद्याध्ययन में कोई बाधा उत्पन्न नहीं होती।

विद्यया लुप्यते पापं विद्ययाडयुः प्रवर्धते। विद्यया सर्वसिद्धिः स्याद्विद्ययामृतश्नुते॥

वेदविद्या के अध्ययन से सारे पापों का लोप होता है, आयु की वृद्धि होती है, सारी सिद्धियां प्राप्त होती है, यहां तक कि विद्यार्थी के समक्ष साक्षात् अमृतरस अशन-पान के रुप में उपलब्ध हो जाता है। शास्त्रवचन है की जिसे विद्या नहीं आती, उसे धर्म, अर्थ, काम, मोक्ष के चारों फलों से वंचित रहना पडता है। इसलिए विद्या की आवश्यकता अनिवार्य है।

कर्ण वेध-कन्छेदन

हिन्दु धर्म में कर्णवेध संस्कार नवम संस्कार है।यह बालक की

शारीरिक व्याधि से रक्षा ही इस संस्कार का मूल उद्देश्य है। प्रकृति प्रदत्त इस शरीर के सारे अंग महत्वपूर्ण हैं। कान हमारे श्रवण द्वार हैं। कर्ण वेधन से व्याधियां दूर होती हैं तथा श्रवण शक्ति भी बढ़ती है। इसके साथ ही कानों में आभूषण हमारे सौन्दर्य बोध का परिचायक भी है।यज्ञोपवीत के पूर्व इस संस्कार को करने का विधान है। ज्योतिष शास्त्र के अनुसार शुक्ल पक्ष के शुभ मुहूर्त में इस संस्कार का सम्पादन श्रेयस्कर है। यह पैरों का सन्तुलन बनाये रखने हेतु भी किया जाता है।मूल नक्षत्र में पैदा हुए बालक का कर्ण भेदन अवश्य कराना चाहिये।कन्याओं के लिये तो कर्णवेध नितान्त आवश्यक माना गया है। इसमें दोनों कानों को वेध करके उसकी नस को ठीक रखने के लिए उसमें सुवर्ण कुण्डल धारण कराया जाता है। इससे शारीरिक लाभ होता है।इसे उपनयन के पूर्व ही कर दिया जाना चाहिए। इस संस्कार को 6 माह से लेकर 16 वें माह तक अथवा 3,5 आदि विषम वर्षों में या कुल की पंरपरा के अनुसार उचित आयु में किया जाता है।

हमारे शास्त्रों में कर्णवेध रहित पुरुष को श्राद्ध का अधिकारी नहीं माना गया है। ब्राह्मण और वैश्य का कर्णवेध चांदी की सुई से, शुद्र का लोहे की सुई से तथा क्षत्रिय और संपन्न पुरुषों का सोने की सुई से करने का विधान है। कर्णवेध-संस्कार द्विजों (ब्राह्मण, क्षत्रिय और वैश्य) का साही के कांटे से भी करने का विधान है। शुभ समय में, पवित्र स्थान पर बैठकर देवताओं का पूजन करने के पश्चात सूर्य के सम्मुख बालक या बालिका के कानों को मंत्र द्धारा अभिंमत्रित करना चाहिए।

भद्रं कर्णेभिः क्षृणुयाम देवा भद्रं पश्येमाक्षभिर्यजत्राः।
स्थिरैरंगैस्तुष्टुवां सस्तनूभिर्व्यशेमहि देवहितं यदायुः॥

इसके बाद बालक के दाहिने कान में पहले और बाएं कान में बाद में सुई से छेद करें। उनमें कुडंल आदि पहनाएं। बालिका के पहले बाएं कान में, फिर दाहिने कान में छेद करके तथा बाएं नाक में भी छेद करके आभुषण पहनाने का विधान है।

यज्ञोपवीत-जनेऊ

यज्ञोपवीत बौद्धिक विकास के लिये सर्वाधिक महत्वपूर्ण संस्कार है। धार्मिक उन्नति का इस संस्कार में पूर्णरूपेण समावेश है। इस संस्कार के माध्यम से वेदमाता गायत्री को आत्मसात करने का प्रावधान दिया है। आधुनिक युग में भी गायत्री मंत्र पर विशेष शोध हो चुका है। गायत्री एक शक्तिशाली मंत्र है। यज्ञोपवीतं परमं पवित्रं अर्थात् यज्ञोपवीत जिसे जनेऊ भी कहा जाता है अत्यन्त पवित्र है। प्रजापति ने स्वाभाविक रूप से इसका निर्माण किया है। यह आयु को बढ़ानेवाला, बल और तेज प्रदान करनेवाला है। गुरुकुल परम्परा में प्रायः आठ वर्ष की उम्र में यज्ञोपवीत संस्कार सम्पन्न किया जाता था।

यज्ञोपवीत से ही बालक को ब्रह्मचर्य की दीक्षा दी जाती थी जिसका पालन गृहस्थाश्रम में आने से पूर्व तक किया जाता था। इस संस्कार का उद्देश्य संयमित जीवन के साथ आत्मिक विकास में रत रहने के लिये बालक को प्रेरित करना है।

वेदारम्भ

यह संस्कारज्ञानार्जन से सम्बन्धित है। इस संस्कार का अभिप्राय है कि बालक वेदाध्ययन से ज्ञान को समाविष्ट करना शुरू करे। शास्त्रों में ज्ञान से बढ़कर दूसरा कोई प्रकाश नहीं समझा गया है।यज्ञोपवीत के बाद बालकों को वेदों का अध्ययन एवं विशिष्ट ज्ञान से परिचित होने के लिये गुरुकुल में भेजा जाता था। असंयमित जीवन जीने वाले वेदाध्ययन के अधिकारी नहीं माने जाते थे। चारों वेद ज्ञान के अक्षुण्ण भंडार हैं। वेदारम्भ से पहले आचार्य अपने शिष्यों को ब्रह्मचर्य व्रत का पालन करने एवं संयमित जीवन जीने की प्रतिज्ञा कराते थे तथा उसकी परीक्षा लेने के बाद ही वेदाध्ययन कराते थे। जीवन को सकारात्मक बनाने के लिए शिक्षा जरूरी है। शिक्षा का शुरू होना ही विद्यारंभ संस्कार है। गुरु के आश्रम में भेजने के पहले अभिभावक अपने पुत्र को अनुशासन के साथ आश्रम में रहने की सीख देते हुए भेजते थे। ये संस्कार भी उपनयन संस्कार जैसा ही है, इस संस्कार के बाद बच्चों को वेदों की शिक्षा मिलना आरम्भ किया जाता है

केशान्त-मुण्डन

वेदाध्ययन पूर्ण कर लेने पर आचार्य के समक्ष यह संस्कार सम्पन्न किया जाता था। वस्तुतः यह संस्कार गुरुकुल से विदाई लेने तथा गृहस्थाश्रम में प्रवेश करने का उपक्रम है। वेद-पुराणों एवं विभिन्न विषयों में पारंगत होने के बाद ब्रह्मचारी के समावर्तन संस्कार के पूर्व बालों की सफाई की जाती थी तथा उसे स्नान कराकर स्नातक की उपाधि दी जाती थी। केशान्त संस्कार शुभ मुहूर्त में किया जाता था। इस संस्कार के बाद ही ब्रह्मचारी युवक को गृहस्थ जीवन के योग्य शारीरिक और व्यावहारिक योग्यता की दीक्षा दी जाती थी।[आगोदानकर्मणः-ब्रह्मचर्यम्-भा.यू.सू.] उसके बाद इस केशान्त संस्कार में भी मुंण्डन करना होता है। इसलिए कहा भी है कि शास्त्रोक्त विधि से भली-भाँति व्रत का आचरण करने वाला ब्रह्मचारी इस केशान्त-संस्कार में सिर के केशों को तथा श्मश्रु के बालों को कटवाता है।

केशान्तकर्मणा तत्र यथोक्त-चरितव्रतः इस संस्कार में दाढ़ी बनाने के पश्चात उन बालों को या तो गाय के गोबर में मिला दिया जाता था या गौशाला में गढ्ठा खोदकर दबा दिया जाता था अथवा किसी नदी में प्रवाहित कर दिया जाता था।इस प्रकार की क्रिया इसलिए की जाती थी ताकि कोई तांत्रिक उन बालों पर अपनी तान्त्रिक क्रिया के द्वारा नुकसान न पहुंचा सके।इस संस्कार के बाद गुरू को गाय दान दिया जाता था। यह संस्कार शुभ मुहुर्त देखकर आयोजित किया जाता था।

समावर्तन

गुरुकुल से विदाई लेने से पूर्व शिष्य का समावर्तन संस्कार होता

था। इस संस्कार से पूर्व ब्रह्मचारी का केशान्त संस्कार होता था और फिर उसे स्नान कराया जाता था। यह स्नान समावर्तन संस्कार के तहत होता था। इसमें सुगन्धित पदार्थो एवं औषधादि युक्त जल से भरे हुए वेदी के उत्तर भाग में आठ घड़ों के जल से स्नान करने का विधान है। यह स्नान विशेष मन्त्रोच्चारण के साथ होता था। इसके बाद ब्रह्मचारी मेखला व दण्ड को छोड़ देता था जिसे यज्ञोपवीत के समय धारण कराया जाता था। इस उपाधि से वह सगर्व गृहस्थाश्रम में प्रवेश करने का अधिकारी समझा जाता था। सुन्दर वस्त्र व आभूषण धारण करता था तथा गुरुजनों से आशीर्वाद ग्रहण कर अपने घर के लिये विदा होता था।

विवाह

स्त्री और पुरुष दोनों के लिये यह सर्वाधिक महत्वपूर्ण संस्कार है। यज्ञोपवीत से समावर्तन संस्कार तक ब्रह्मचर्य व्रत के पालन का शास्त्रों में विधान है। वेदाध्ययन के बाद जब युवक में सामाजिक परम्परा निर्वाह करने की क्षमता व परिपक्वता आ जाती थी तो उसे गृहस्थ्य धर्म में प्रवेश कराया जाता था। लगभग पच्चीस वर्ष तक ब्रह्मचर्य का व्रत का पालन करने के बाद युवक परिणय सूत्र में बंधता था।शास्त्रों में आठ प्रकार के विवाहों का उल्लेख है- ब्राह्म, दैव, आर्ष, प्रजापत्य, आसुर, गन्धर्व, राक्षस एवं पैशाच। वैदिक काल में ये सभी प्रथाएं प्रचलित थीं। विवाह शब्द का तात्पर्य मात्र स्त्री-पुरुष के समागम सम्बन्ध तक ही सीमित नहीं है अपितु सन्तानोत्पादन के साथ-साथ सन्तान को सक्षम आत्मनिर्भर होने तक के दायित्व का निर्वाह और सन्तति परम्परा को योग्य लोक शिक्षण देना भी इसी संस्कार का अंग है। शास्त्रों में अविवाहित व्यक्ति को अयज्ञीय कहा गया है और उसे सभी प्रकार के अधिकारों के अयोग्य माना गया है-

अयज्ञियो वा एष योऽपत्नीकः

मनुष्य जन्म ग्रहण करते ही तीन ऋणों से युक्त हो जाता है, ऋषि ऋण, देव ऋण, पितृऋण और तीनों ऋणों से क्रमशः ब्रह्मचर्य, यज्ञ, सन्तानोत्पादन करके मुक्त हो पाता है।

जायमानो ह वै ब्राहणस्त्रिार्ऋणवान् जायते-ब्रह्मचर्येण ऋषिभ्यो, यज्ञेन देवेभ्यः प्रजया पितृभ्यः।

गृहस्थाश्रम सभी आश्रमों का आश्रम है। जैसे वायु प्राणिमात्रा के जीवन का आश्रय है, उसी प्रकार गार्हस्थ्य सभी आश्रमों का आश्रम है।

यथा वायुं समाश्रित्य वर्त्तन्ते सर्वजन्तवः तथा गृहस्थमाश्रित्य वर्तन्ते सर्व आश्रमाः।

यस्मात् त्रायोऽप्याश्रमिणो ज्ञानेनान्नेन चान्वहम् गृहस्थेनैव धार्यन्ते तस्मा ज्येष्ठाश्रमो गृही।

विवाह अनुलोम रीति से ही करना चाहिए-प्रातिलोम्य विवाह सुखद नहीं होता अपितु परिणाम में कष्टकारी होता है।

त्रायाण्यमानुलोम्यं स्यात् प्रातिलोम्यं न विद्यते प्रातिलौम्येन यो याति न तस्मात् पापकृत्तरः।

अपत्नीको नरो भूप कर्मयोग्यो न जायते। ब्राह्मणः क्षत्रियो वापि वैश्यः शूद्रोऽपि वा नरः।

विवाह के प्रकार :- स्मृतियों ने इस प्रकार के विवाहों को आठ भागों में विभक्त किया है।

1. ब्राह्म, 2. दैव, 3. आर्ष, 4. प्राजापत्य, 5. आसुर, 6. गान्धर्व, 7. राक्षस, व 8. पैचाश।

इनमें प्रथम चार प्रशस्त और चार अप्रशस्त की श्रेणी में रखे गये हैं। प्रथम चार में भी ब्राह्म विवाह सर्वोत्तम और समाज में प्रशंसनीय था शेष तारतम्य भाव से ग्राह्य थे। किन्तु दो सर्वथा अग्राह्य थे।

(सक्षेप में विवाह संस्था के उद्देश्य और उसके प्रकार का विवरण दिया गया है। विवाह के विविध-विधान के लिए देश-काल-प्रान्तभेद से पद्धतियां उपलब्ध हैं तदनुसार वैवाहिक संस्कार सम्पन्न किया जाना चाहिए।

अन्त्येष्टि

अन्त्येष्टि को अग्नि परिग्रह संस्कार भी कहा जाता है। आत्मा में अग्नि का आधान करना ही अग्नि परिग्रह है। धर्म शास्त्रों की मान्यता है कि मृत शरीर की विधिवत् क्रिया करने से जीव की अतृप्त वासनायें शान्त हो जाती हैं। शास्त्रों में बहुत ही सहज ढंग से इहलोक और परलोक की परिकल्पना की गयी है। जब तक जीव शरीर धारण कर इहलोक में निवास करता है तो वह विभिन्न कर्मो से बंधा रहता है। प्राण छूटने पर वह इस लोक को छोड़ देता है। उसके बाद की परिकल्पना में विभिन्न लोकों के अलावा मोक्ष या निर्वाण है।अन्त्येष्टि ऐहिक जीवन का अन्तिम अध्याय है। आत्मा की अमरता एवं लोक परलोक का विश्वासी जीवन इस लोक की अपेक्षा पारलौकिक कल्याण की सतत कामना करता है। मरणोत्तर संस्कार से ही पारलौकिक विजय प्राप्त होती है -

जात संस्कारेणेमं लोकमभिजयति मृतसंस्कारेणामुं लोकम्॥

विधि-विधान, आतुरकालिक दान, वैतरणीदान, मृत्युकाल में भू शयन व्यवस्था मृत्युकालिक स्नान, मरणोत्तर स्नान, पिण्डदान, (मलिन षोडशी) के 6 पिण्ड दशगात्रायावत् तिलाञ्जलि, घटस्थापन दीपदान, दशाह के दिन मलिन षोडशी के शेष पिण्डदान एकादशाह के षोडश श्राद्ध, विष्णुपूजन शैय्यादान आदि। सपिण्डीकरण, शय्यादान एवं लोक व्यवस्था के अनुसार उत्तर कर्म आयोजित कराने चाहिए। इन सभी कर्मो के लिए प्रान्त देशकाल के अनुसार पद्धतियां उपलब्ध हैं तदनुसार उन कर्मो का आयोजन किया जाना चाहिए।

सृष्टि में इस सौरमंडल के सृजन का एक पड़ाव

संजयं तिवारी

यह एक पोर है। एक विंदु है। रेखा का एक छोर है। एक अंत है। एक प्रारम्भ है। यह सृष्टि का सूर्य पर्व है। यह कोटि-कोटि ब्रह्मांडो में से इस पृश्नि ब्रह्माण्ड के द्वितीय मन्वन्तर में वाराहकल्प के कलियुग के काली प्रथम चरण में प्रति वर्ष आने वाला वह पर्व है जो हमें जीवन के सिद्धांतो और उद्देश्यों का स्मरण करता है। जिस सौर मंडल में हम रहते है, उस सौर मंडल के सर्जन का एक पड़ाव है मकर संक्रांति।

खिचड़ी या मकर संक्रांति से बिलकुल नयी शुरुआत होती है सृष्टि की। इस दिन से सूर्य उत्तरायण होता है, जब उत्तरी गोलार्ध सूर्य की ओर मुड़ जाता है। परम्परा से यह विश्वास किया जाता है कि इसी दिन सूर्य मकर राशि में प्रवेश करता है। यह वैदिक उत्सव है। इस दिन खिचड़ी का भोग लगाया जाता है। गुड़–तिल, रेवड़ी, गजक का प्रसाद बाँटा जाता है। इस त्यौहार का सम्बन्ध प्रकृति, ऋतु परिवर्तन और कृषि से है। ये तीनों चीज़ें ही जीवन का आधार हैं। खिचड़ी या मकर संक्रांति से बिलकुल नयी शुरुआत होती है सृष्टि की।

पर्व शब्द का सामान्य लोक अर्थ प्रचलन में किसी भी उत्सव या त्योहार से जुड़ा है लेकिन यह पर्याप्त नहीं है। पर्व वस्तुतः सृष्टि के पड़ाव का द्योतक है। सृष्टि का कोई भी क्रम जब एक चक्र पूर्ण करता है वही उसका पर्व होता है। इसी आधार पर सुरमंडल की यात्रा के आधार पर वर्ष की प्रत्येक तिथि पर्व के रूप में आती है। इनमे से वे तिथियां जिनको लोकमानस या जीवन में किसी अनुष्ठान या उत्सव से जोड़ा गया है, वे उस उत्सव विशेष के पर्व के रूप में स्थापित है। इस प्रकार मानव जीवन के सभी उत्सव और त्यौहार पर्व के रूप में ही आते है। यह किसी तिथि विशेष के यात्रा का एक पड़ाव है। यह ठीक वैसे ही है जैसे बांस की वृद्धि होती है। एक पोर से दूसरा पोर , फिर तीसरा और इसी तरह वृद्धि का क्रम चलता है और बांस लंबा होता चलता है। मानव जीवन की यात्रा भी इसी प्रकार प्रत्येक पर्व पर आगे बढती रहती है। किसी भी तंत्र में किसी भी संधिस्थल को पर्व ही संज्ञा दी जाती है। यह उत्सव हो सकता है। जीवन हो सकता है। कोई कार्य हो सकता है। ग्रन्थ हो सकता है। शरीर के अंग हो सकते है।

सृष्टि, सूर्य नारायण और गायत्री मंत्र

वर्त्तमान सृष्टि , भगवान् सूर्य नारायण और गायत्री मंत्र का आपस में बहुत गहरा सम्बन्ध है। जो गायत्री मंत्र के प्रतिपाद्य देव है वही इस समस्त सृष्टि के भी प्रतिपाद्य देव है। भगवान नारायण ही इन दोनों में विद्यमान है। सूर्य तो रश्मियों का प्रभामंडल भर है। इन रश्मियों के केंद्र में जो विद्यमान है उनको मिलकर ही भगवान् सूर्य नारायण की अवस्थापना है। यही नारायण भगवान् विष्णु है। इसी लिए बाल्मीकि रामायण का प्रारम्भ गायत्री मंत्र के प्रथमाक्षर त से हुआ है तथा बाल्मीकि रामायण के समापन का अक्षर भी त है, क्योंकि गायत्री मंत्र के समापन का अक्षर भी त ही है। अर्थात जो बाल्मीकि रामायण के प्रतिपाद्य देव है वही गायत्री मंत्र के भी प्रतिपाद्य देवता है - अर्थात भगवान् विष्णु। आचार्यो का मत है की गायत्री मंत्र के 24 अक्षरो का विस्तार ही बाल्मीकि रामायण के 24 हज़ार श्लोक हैं। तात्पर्य यह कि गायत्री मंत्र , जिसको वेद माता की संज्ञा भी दी जाती है , यह किसी देवी की स्तुति नहीं है , बल्कि सीधे श्रीमन्नारायण की स्तुति है। इसमे

श्री नारायण को ही केंद्रित किया गया है , ऐसा वैदिक आचार्यगण भी स्वीकार करते है। वास्तविक रूप में जब भी भारतीय पर्व परंपरा सूर्य से जुडती है तो बहुत ही घनिष्ठ सम्बन्ध अपनी श्रुति परम्पपरा यानी वेदों से सम्बन्ध स्थापित होता है। लोक प्रचलन में हम जिस गायत्री मन्त्र को जानते है वह वास्तव में सूर्य का ही मंत्र है। गायत्री मंत्र में - तत्सवितुर्वरेण्यं - में जिस सविता देवता की आराधना हम करते है वह यही सूर्य देवता है। यहाँ किसी गायत्री नाम की देवी भ्रम नहीं रखना चाहिए क्योकि मंत्र में हम - भर्गो देवस्य - की पूजा करते है न कि किसी देवी की। यह सविता देवता यही है जो प्रभामंडल के केंद्र में नारायण के रूप में विद्यमान है जिनको सूर्यनारायण की संज्ञा दी जाती है। यही सूर्य नारायण, यानी नारायण , यानी भगवान् विष्णु है जिनकी आराधना गायत्री मंत्र के माध्यम से की जाती है। इसी नारायण से यह सृष्टि है, और संक्रांति इसी सृष्टि का एक पर्व यानी यात्रा का एक पड़ाव होता है। आचार्य श्री जगद्गुरु राघवाचार्य जी महाराज ने भी गायत्री मंत्र और बाल्मीकि रामायण के अंतरसंबंधों पर बहुत ही विस्तृत व्याख्या दी है।

खिचड़ी या मकर संक्रांति से बिलकुल नयी शुरुआत होती है सृष्टि की। इस दिन से सूर्य उत्तरायण होता है, जब उत्तरी गोलार्ध सूर्य की ओर मुड़ जाता है। परम्परा से यह विश्वास किया जाता है कि इसी दिन सूर्य मकर राशि में प्रवेश करता है। यह वैदिक उत्सव है। इस दिन खिचड़ी का भोग लगाया जाता है। गुड़–तिल, रेवड़ी, गजक का प्रसाद बाँटा जाता है। इस त्यौहार का सम्बन्ध प्रकृति, ऋतु परिवर्तन और कृषि से है। ये तीनों चीज़ें ही जीवन का आधार हैं। प्रकृति के कारक के तौर पर इस पर्व में सूर्य देव को पूजा जाता है, जिन्हें शास्त्रों में भौतिक एवं अभौतिक तत्वों की आत्मा कहा गया है। इन्हीं की स्थिति के अनुसार ऋतु परिवर्तन होता है और धरती अनाज उत्पन्न करती है, जिससे जीव समुदाय का भरण-पोषण होता है। यह एक अति महत्त्वपूर्ण धार्मिक कृत्य एवं उत्सव है। लगभग 80 वर्ष पूर्व उन दिनों के पंचांगों के अनुसार, यह 12वीं या 13वीं जनवरी को पड़ती थी, किंतु अब विषुवतों के अग्रगमन (अयनचलन) के कारण 13वीं या 14वीं जनवरी को पड़ा करती है। वर्ष 2016 में मकर संक्रान्ति '15 जनवरी' को मनाई गयी । इस वर्ष फिर 14 जनवरी को खिचड़ी मनाई जानी है। इस दिन भगवान सूर्य की पूजा करने का विशेष विधान है। सनातन शास्त्रों के अनुसार मकर संक्रांति से देवताओं का दिन आरंभ होता है जो कि आषाढ़ मास तक रहता है। इसी दिन सूर्य धनु राशि को छोड़ मकर राशि में प्रवेश करता है। मकर संक्रान्ति के दिन से ही सूर्य की उत्तरायण गति भी प्रारम्भ होती है। तमिलनाडु में इसे पोंगल नामक उत्सव के रूप में मनाते हैं। जबकि उत्तर भारत में यह खिचड़ी के रूप में मनाया जाता है। इस पर्व की एक कथा गुरु गोरक्षनाथ और माता ज्वालादेवी से भी जुडी है। इस दिन गोरखपुर स्थित गोरखनाथ मंदिर में प्रथम खिचड़ी नेपाल के महाराजा की तरफ से चढ़ाई जाती है। ऐसा परंपरा रूप में सैकड़ो वर्षो से होता आ रहा है। ब्राह्मण एवं औपनिषदिक ग्रंथों में उत्तरायण

उत्तरायण आदि कालों में संस्कारों के करने की विधि वर्णित है। किंतु प्राचीन श्रौत, गृह्य एवं धर्म सूत्रों में राशियों का उल्लेख नहीं है, उनमें केवल नक्षत्रों के संबंध में कालों का उल्लेख है। याज्ञवल्क्यस्मृति में भी राशियों का उल्लेख नहीं है, जैसा कि विश्वरूप की टीका से प्रकट है। 'उदगयन' बहुत शताब्दियों पूर्व से शुभ काल माना जाता रहा है, अतः मकर संक्रान्ति, जिससे सूर्य की उत्तरायण गति आरम्भ होती है, राशियों के चलन के उपरान्त पवित्र दिन मानी जाने लगी। मकर संक्रान्ति पर तिल को इतनी महत्ता क्यों प्राप्त हुई, कहना कठिन है। सम्भवतः मकर संक्रान्ति के समय जाड़ा होने के कारण तिल जैसे पदार्थों का प्रयोग सम्भव है।

संक्रांति का अर्थ

'संक्रान्ति' का अर्थ है सूर्य का एक राशि से दूसरी राशि में जाना, अतः वह राशि जिसमें सूर्य प्रवेश करता है, संक्रान्ति की संज्ञा से विख्यात है। राशियाँ बारह हैं, यथा मेष, वृषभ, मिथुन, कर्क, सिंह, कन्या, तुला, वृश्चिक , धनु, मकर, कुम्भ, मीन। मलमास पड़ जाने पर भी वर्ष में केवल 12 राशियाँ होती हैं। प्रत्येक संक्रान्ति पवित्र दिन के रूप में ग्राह्य है। मत्स्यपुराण ने संक्रान्ति व्रत का वर्णन किया है। एक दिन पूर्व व्यक्ति (नारी या पुरुष) को केवल एक बार मध्याह्न में भोजन करना चाहिए और संक्रान्ति के दिन दाँतों को स्वच्छ करके तिल युक्त जल से स्नान करना चाहिए। व्यक्ति को चाहिए कि वह किसी संयमी ब्राह्मण गृहस्थ को भोजन सामग्रियों से युक्त तीन पात्र तथा एक गाययम, रुद्र एवं धर्म के नाम पर दे और चार श्लोकों को पढ़े, जिनमें से एक यह है- 'यथा भेदं' न पश्यामि का अर्थ है- शं कल्याणं करोति। यदि हो सके तो व्यक्ति को चाहिए कि वह ब्राह्मण को आभूषणों, पर्यंक, स्वर्णपात्रों (दो) का दान करे। यदि वह दरिद्र हो तो ब्राह्मण को केवल फल दे। इसके उपरान्त उसे तैल-विहीन भोजन करना चाहिए और यथा शक्ति अन्य लोगों को भोजन देना चाहिए। स्त्रियों को भी यह व्रत करना चाहिए। संक्रान्ति, ग्रहण, अमावस्या एवं पूर्णिमा पर गंगा स्नान महापुण्यदायक माना गया है और ऐसा करने पर व्यक्ति ब्रह्मलोक को प्राप्त करता है। प्रत्येक संक्रान्ति पर सामान्य जल (गर्म नहीं किया हुआ) से स्नान करना नित्यकर्म कहा जाता है, जैसा कि देवीपुराण में घोषित है- 'जो व्यक्ति संक्रान्ति के पवित्र दिन पर स्नान नहीं करता वह सात जन्मों तक रोगी एवं निर्धन रहेगा (संक्रान्ति पर जो भी देवों को हव्य एवं पितरों को कव्य दिया जाता है, वह सूर्य द्वारा भविष्य के जन्मों में लौटा दिया जाता है।

पुण्यकाल

प्राचीन ग्रंथ में ऐसा लिखित है कि केवल सूर्य का किसी राशि में प्रवेश मात्र ही पुनीतता का द्योतक नहीं है, प्रत्युत सभी ग्रहों का अन्य नक्षत्र या राशि में प्रवेश पुण्यकाल माना जाता है। हेमाद्रि एवं काल निर्णय ने क्रम से जैमिनि एवं ज्योतिःशास्त्र से उद्धरण देकर सूर्य एवं ग्रहों की संक्रान्ति का पुण्यकाल को घोषित किया है- 'सूर्य के विषय में संक्रान्ति के पूर्व या पश्चात् 16 घटिकाओं का समय पुण्य समय है (चन्द्र के विषय में दोनों ओर एक घटी 13 फल पुण्यकाल है) मंगल के लिए 4 घटिकाएँ एवं एक पल (बुध के लिए 3 घटिकाएँ एवं 14 पल, बृहस्पति के लिए चार घटिकाएँ एवं 37 पल, शुक्र

के लिए 4 घटिकाएँ एवं एक पल तथा शनि के लिए 82 घटिकाएँ एवं 7 पल।

सूर्य जब एक राशि छोड़कर दूसरी में प्रवेश करता है तो उस काल का यथावत् ज्ञान हमारी माँसल आँखों से सम्भव नहीं है, अतः संक्रान्ति की 30 घटिकाएँ इधर या उधर के काल का द्योतन करती हैं। सूर्य का दूसरी राशि में प्रवेश काल इतना कम होता है कि उसमें संक्रान्ति कृत्यों का सम्पादन असम्भव है, अतः इसकी सन्निधि का काल उचित ठहराया गया है। देवीपुराण में संक्रान्ति काल की लघुता का उल्लेख यों है- 'स्वस्थ एवं सुखी मनुष्य जब एक बार पलक गिराता है तो उसका तीसवाँ काल 'तत्पर' कहलाता है, तत्पर का सौवाँ भाग 'त्रुटि' कहा जाता है तथा त्रुटि के सौवें भाग में सूर्य का दूसरी राशि में प्रवेश होता है। सामान्य नियम यह है कि वास्तविक काल के जितने ही समीप कृत्य हो वह उतना ही पुनीत माना जाता है।' इसी से संक्रान्तियों में पुण्यतम काल सात प्रकार के माने गये हैं- 3, 4, 5, 7, 8, 9 या 12 घटिकाएँ। इन्हीं अवधियों में वास्तविक फल प्राप्ति होती है। यदि कोई इन अवधियों के भीतर प्रतिपादित कृत्य न कर सके तो उसके लिए अधिकतम काल सीमाएँ 30 घटिकाओं की होती हैं(किंतु ये पुण्यकाल-अवधियाँ षडशीति एवं विष्णुपदी को छोड़कर अन्य सभी संक्रान्तियों के लिए है।'

आज के ज्योतिष शास्त्र के अनुसार जाड़े का अयन काल 21 दिसम्बर को होता है और उसी दिन से सूर्य उत्तरायण होते हैं। किंतु भारत में वे लोग, जो प्राचीन पद्धतियों के अनुसार रचे पंचांगों का सहारा लेते हैं, उत्तरायण का आरम्भ 14 जनवरी से मानते हैं। वे इस प्रकार उपयुक्त मकर संक्रान्ति से 23 दिन पीछे हैं। मध्यकाल के धर्मशास्त्र ग्रंथों में यह बात उल्लिखित है, यथा हेमाद्रि ने कहा है कि प्रचलित संक्रान्ति से 12 दिन पूर्व ही पुण्यकाल पड़ता है, अतः प्रतिपादित दान आदि कृत्य प्रचलित संक्रान्ति दिन के 12 दिन पूर्व भी किये जा सकते हैं।

पुण्यकाल के नियम

संक्रान्ति के पुण्यकाल के विषय में सामान्य नियम के प्रश्न पर कई मत हैं। शातातप, जाबाल एवं मरीचि ने संक्रान्ति के धार्मिक कृत्यों के लिए संक्रान्ति के पूर्व एवं उपरान्त 16 घटिकाओं का पुण्यकाल प्रतिपादित किया है (किंतु देवीपुराण एवं वसिष्ठ ने 15 घटिकाओं के पुण्यकाल की व्यवस्था दी है। यह विरोध यह कहकर दूर किया जाता है कि लघु अवधि केवल अधिक पुण्य फल देने के लिए है और 16 घटिकाओं की अवधि विष्णुपदी संक्रान्तियों के लिए प्रतिपादित है। संक्रान्ति दिन या रात्रि दोनों में हो सकती है। दिन वाली संक्रान्ति पूरे दिन भर पुण्यकाल वाली होती है। रात्रि वाली संक्रान्ति के विषय में हेमाद्रि, माधव आदि में लम्बे विवेचन उपस्थित किए गये हैं। एक नियम यह है कि दस संक्रान्तियों में, मकर एवं कर्कट को छोड़कर पुण्यकाल दिन में होता है, जबकि वे रात्रि में पड़ती हैं। इस विषय का विस्तृत विवरण तिथितत्त्व और धर्मसिंधु में मिलता है।

ग्रहों की संक्रान्ति

ग्रहों की भी संक्रान्तियाँ होती हैं, किन्तु पश्चात्कालीन लेखकों के अनुसार 'संक्रान्ति' शब्द केवल रवि-संक्रान्ति के नाम से ही द्योतित है, जैसा कि स्मृतिकौस्तुभ में उल्लिखित है। वर्ष भर की 12 संक्रान्तियाँ चार श्रेणियों में विभक्त हैं-

दो अयन संक्रान्तियाँ- मकर संक्रान्ति, जब उत्तरायण का आरम्भ होता है एवं कर्कट संक्रान्ति, जब दक्षिणायन का आरम्भ होता है।

दो विषुव संक्रान्तियाँ अर्थात मेष एवं तुला संक्रान्तियाँ, जब रात्रि एवं दिन बराबर होते हैं।

वे चार संक्रान्तियाँ, जिन्हें षडयीतिमुख अर्थात् मिथुन, कन्या, धनु एवं मीन कहा जाता है तथा

विष्णुपदी या विष्णुपद अर्थात् वृषभ, सिंह, वृश्चिक एवं कुम्भ नामक संक्रान्तियाँ।

संक्रांति के प्रकार

'ये बारह संक्रान्तियाँ सात प्रकार की, सात नामों वाली हैं, जो किसी सप्ताह के दिन या किसी विशिष्ट नक्षत्र के सम्मिलन के आधार पर उल्लिखित हैं(वे ये हैं- मन्दा, मन्दाकिनी, ध्वांक्षी, घोरा, महोदरी, राक्षसी एवं मिश्रिता।

घोरा रविवार, मेष या कर्क या मकर संक्रान्ति को,

ध्वांक्षी सोमवार को,

महोदरी मंगल को,

मन्दाकिनी बुध को,

मन्दा बृहस्पति को,

मिश्रिता शुक्र को एवं

राक्षसी शनि को होती है।

इसके अतिरिक्त कोई संक्रान्ति यथा मेष या कर्क आदि क्रम से मन्दा, मन्दाकिनी, ध्वांक्षी, घोरा, महोदरी, राक्षसी, मिश्रित कही जाती है, यदि वह क्रम से ध्रुव, मृदु, क्षिप्र, उग्र, चर, क्रूर या मिश्रित नक्षत्र से युक्त हों। 27 या 28 नक्षत्र निम्नोक्त रूप से सात दलों में विभाजित हैं-

ध्रुव (या स्थिर) – उत्तराफाल्गुनी, उत्तराषाढ़ा, उत्तराभाद्रपदा, रोहिणी

मृदु – अनुराधा, चित्रा, रेवती, मृगशीर्ष

क्षिप्र (या लघु) – हस्त, अश्विनी, पुष्य, अभिजित

उग्र – पूर्वाफाल्गुनी, पूर्वाषाढ़ा, पूर्वाभाद्रपदा, भरणी, मघा

चर – पुनर्वसु, श्रवण, धनिष्ठा, स्वाति , शतभिषक

क्रूर (या तीक्ष्ण) – मूल, ज्येष्ठा, आर्द्रा, आश्लेषा

मिश्रित (या मृदुतीक्ष्ण या साधारण) – कृत्तिका, विशाखा। ऐसा उल्लिखित है कि ब्राह्मणों के लिए मन्दा, क्षत्रियों के लिए मन्दाकिनी, वैश्यों के लिए ध्वांक्षी, शूद्रों के लिए घोरा, चोरों के लिए महोदरी, मद्य विक्रेताओं के लिए राक्षसी तथा चाण्डालों, पुक्कसों तथा जिनकी वृत्तियाँ (पेशे) भयंकर हों एवं अन्य शिल्पियों के लिए मिश्रित संक्रान्ति श्रेयस्कर होती है।

संक्रान्ति का देवीकरण

आगे चलकर संक्रान्ति का देवीकरण हो गया और वह साक्षात् दुर्गा कही जाने लगी। देवीपुराण में आया है कि देवी वर्ष, अयन, ऋतु, मास, पक्ष, दिन आदि के क्रम से सूक्ष्म विभाग के कारण सर्वगत विभु रूप वाली है। देवी पुण्य तवं पाप के विभागों के अनुसार फल देने वाली है। संक्रान्ति के काल में किये गये एक कृत्य से भी कोटि-कोटि फलों की प्राप्ति होती है। धर्म से आयु, राज्य, पुत्र, सुख आदि की वृद्धि होती है, अधर्म से व्याधि, शोक आदि बढ़ते हैं। विषुव संक्रान्ति के समय जो दान या जप किया जाता है या अयन में जो सम्पादित होता है, वह अक्षय होता है। यही बात विष्णुपद एवं षडशीति मुख के विषय में भी है।

तिल के लड्डू

आजकल के पंचांगों में मकर संक्रान्ति का देवीकरण भी हो गया है। वह देवी मान ली गयी है। संक्रान्ति किसी वाहन पर चढ़ती है, उसका प्रमुख वाहन हाथी जैसे वाहन पशु हैं, उसके उपवाहन भी हैं, उसके वस्त्र काले, श्वेत या लाल आदि रंगों के होते हैं, उसके हाथ में धनुष या शूल रहता है, वह लाह या गोरोचन जैसे पदार्थों का तिलक करती है, वह युवा, प्रौढ़ या वृद्ध है, वह खड़ी या बैठी हुई वर्णित है, उसके पुष्पों, भोजन, आभूषणों का उल्लेख है, उसके दो नाम सात नामों में से विशिष्ट हैं, वह पूर्व आदि दिशाओं से आती है और पश्चिम आदि दिशाओं को चली जाती है और तीसरी दिशा की ओर झाँकती है, उसके अधर झुके हैं, नाक लम्बी है, उसके 9 हाथ है। उसके विषय में अग्र सूचनाएँ ये हैं- संक्रान्ति जो कुछ ग्रहण करती है, उसके मूल्य बढ़ जाते हैं या वह नष्ट हो जाता ह, वह जिसे देखती है, वह नष्ट हो जाता है, जिस दिशा से वह जाती है, वहाँ के लोग सुखी होते हैं, जिस दिशा को वह चली जाती है, वहाँ के लोग दुखी हो जाते हैं।

संक्रांति पर दान पुण्य

पूर्व पुण्यलाभ के लिए पुण्यकाल में ही स्नान दान आदि कृत्य किये जाते हैं। सामान्य नियम यह है कि रात्रि में न तो स्नान किया जाता है और न ही दान। पराशर में आया है कि सूर्य किरणों से पूरे दिन में स्नान करना चाहिए, रात्रि में ग्रहण को छोड़कर अन्य अवसरों पर स्नान नहीं करना चाहिए। यही बात विष्णुधर्मसूत्र में भी है। किंतु कुछ अपवाद भी प्रतिपादित हैं। भविष्यपुराण में आया है कि रात्रि में स्नान नहीं करना चाहिए, विशेषतः रात्रि में दान तो नहीं ही करना चाहिए, किंतु उचित अवसरों पर ऐसा किया जा सकता है, यथा ग्रहण, विवाह, संक्रान्ति, यात्रा, जनन, मरण तथा इतिहास श्रवण में। अतः प्रत्येक संक्रान्ति पर विशेषतः मकर संक्रान्ति पर स्नान नित्य कर्म है।

दान निम्न प्रकार के किये जाते हैं

मेष में भेड़, वृषभ में गायें, मिथुन में वस्त्र, भोजन एवं पेय पदार्थ, कर्कट में घृतधेनु, सिंह में सोने के साथ वाहन, कन्या में वस्त्र एवं गौएँ, नाना प्रकार के अन्न एवं बीज, तुला-वृश्चिक में वस्त्र एवं घर, धनु में वस्त्र एवं वाहन, मकर में इन्धन एवं अग्नि, कुम्भ में गौएँ जल एवं घास, मीन में नये पुष्प। अन्य विशेष प्रकार के दानों के विषय में देखिए स्कन्दपुराण , विष्णुधर्मोत्तर, कालिका। आदि।

उपवास

मकर संक्रान्ति के सम्मान में तीन दिनों या एक दिन का उपवास करना चाहिए। जो व्यक्ति तीन दिनों तक उपवास करता है और उसके उपरान्त स्नान करके अयन[34] पर सूर्य की पूजा करता है, विषुव एवं सूर्य या चन्द्र के ग्रहण पर पूजा करता है तो वह वांछित इच्छाओं की पूर्णता पाता है। आपस्तम्ब में आया है कि जो व्यक्ति स्नान के उपरान्त अयन, विषुव, सूर्यचंद्र-ग्रहण पर दिन भर उपवास करता है, वह सभी पापों से मुक्त हो जाता है। किंतु पुत्रवान व्यक्ति को रविवार, संक्रान्ति एवं ग्रहणों पर उपवास नहीं करना चाहिए[35]। राजमार्तण्ड में संक्रान्ति पर किये गये दानों के पुण्य-लाभ पर दो श्लोक हैं- 'अयन संक्रान्ति पर किये गये दानों का फल सामान्य दिन के दान के फल का कोटिगुना होता है और विष्णुपदी पर वह लक्षगुना होता है(षडशीति पर यह 86000 गुना घोषित है। चंद्र ग्रहण पर दान सौ गुना एवं सूर्य ग्रहण पर सहस्त्र गुना, विषुव पर शतसहस्त्र गुना तथा आकामावैकी पूर्णिमा पर अनन्त फलों को देने वाला है। भविष्यपुराण ने अयन एवं विषुव संक्रान्तियों पर गंगा-यमुना की प्रभूत महत्ता गायी है।

नारी द्वारा दान

मकर संक्रान्ति पर अधिकांश में नारियाँ ही दान करती हैं। वे पुजारियों को मिट्टी या ताम्र या पीतल के पात्र, जिनमें सुपारी एवं सिक्के रहते हैं, दान करती हैं और अपनी सहेलियों को बुलाया करती हैं तथा उन्हें कुंकुम, हल्दी, सुपारी, ईख के टुकड़े आदि से पूर्ण मिट्टी के पात्र देती हैं। दक्षिण भारत में पोंगल नामक उत्सव होता है, जो उत्तरी या पश्चिमी भारत में मनाये जाने वाली मकर संक्रान्ति के समान है। पोंगल तमिल वर्ष का प्रथम दिवस है। यह उत्सव तीन दिनों का होता है। पोंगल का अर्थ है 'क्या यह उबल रहा' या 'पकाया जा रहा है?'

संक्रांति पर श्राद्ध

कुछ आचार्यो के मत से संक्रान्ति पर श्राद्ध करना चाहिए। विष्णु

धर्मसूत्र में आया है- 'आदित्य अर्थात् सूर्य के संक्रमण पर अर्थात जब सूर्य एक राशि से दूसरी में प्रवेश करता है, दोनों विषुव दिनों पर, अपने जन्म-नक्षत्र पर विशिष्ट शुभ अवसरों पर काम्य श्राद्ध करना चाहिए(इन दिनों के श्राद्ध से पितरों को अक्षय संतोष प्राप्त होता है। यहाँ पर भी विरोधी मत हैं। शूलापाणि के मत से संक्रान्ति-श्राद्ध में पिण्डदान होना चाहिए, किंतु निर्णयसिंधु के मत से श्राद्ध पिण्डविहीन एवं पार्वण की भाँति होना चाहिए। संक्रान्ति पर कुछ कृत्य वर्जित भी थे। विष्णुपुराण में वचन है- 'चतुर्दशी, अष्टमी, अमावस्या, पूर्णिमा एवं संक्रान्ति पर्व कहे गये हैं(जो व्यक्ति ऐसे अवसर पर संभोग करता है, तैल एवं मांस खाता है, वह विष्मूत्र-भोजन' नामक नरक में पड़ता है। ब्रह्मपुराण में आया है- अष्टमी, पक्षों के अंत की तिथियों में, रवि-संक्रान्ति के दिन तथा पक्षोपान्त (चतुर्दशी) में संभोग, तिल-मांस-भोजन नहीं करना चाहिए। आजकल मकर संक्रान्ति धार्मिक कृत्य की अपेक्षा सामाजिक अधिक है। उपवास नहीं किया जाता, कदाचित कोई श्राद्ध करता हो, किंतु बहुत से लोग समुद्र या प्रयाग जैसे तीर्थों पर गंगा स्नान करते हैं। तिल का प्रयोग अधिक होता है, विशेषतः दक्षिण में। तिल की महत्ता यों प्रदर्शित है- 'जो व्यक्ति तिल का प्रयोग छः प्रकार से करता है वह नहीं डूबता अर्थात् वह असफल या अभागा नहीं होता(शरीर को तिल से नहाना, तिल से उवटना, सदा पवित्र रहकर तिलयुक्त जल देना , अग्नि में तिल डालना, तिल दान करना एवं तिल खाना।

सूर्य प्रार्थना

संस्कृत प्रार्थना के अनुसार 'हे सूर्य देव, आपका दण्डवत प्रणाम, आप ही इस जगत की आँखें हो। आप सारे संसार के आरम्भ का मूल हो, उसके जीवन व नाश का कारण भी आप ही हो।' सूर्य का प्रकाश जीवन का प्रतीक है। चन्द्रमा भी सूर्य के प्रकाश से आलोकित है। वैदिक युग में सूर्योपासना दिन में तीन बार की जाती थी। महाभारत में पितामह भीष्म ने भी सूर्य के उत्तरायण होने पर ही अपना प्राणत्याग किया था। हमारे मनीषी इस समय को बहुत ही श्रेष्ठ मानते हैं। इस अवसर पर लोग पवित्र नदियों एवं तीर्थ स्थलों पर स्नान कर आदिदेव भगवान सूर्य से जीवन में सुख व समृद्धि हेतु प्रार्थना व याचना करते हैं।

मान्यता

यह विश्वास किया जाता है कि इस अवधि में देहत्याग करने वाले व्यक्ति जन्म-मरण के चक्र से पूर्णतः मुक्त हो जाते हैं। महाभारत महाकाव्य में वयोवृद्ध योद्धा पितामह भीष्म पांडवों और कौरवों के बीच हुए कुरुक्षेत्र युद्ध में सांघातिक रूप से घायल हो गये थे। उन्हें इच्छा-मृत्यु का वरदान प्राप्त था। पांडव वीर अर्जुन द्वारा रचित बाणशैया पर पड़े भीष्म उत्तरायण अवधि की प्रतीक्षा करते रहे। उन्होंने सूर्य के मकर राशि में प्रवेश करने पर ही अंतिम सांस ली, जिससे उनका पुनर्जन्म न हो।

तिल संक्राति

देश भर में लोग मकर संक्रांति के पर्व पर अलग-अलग रूपों में तिल, चावल, उड़द की दाल एवं गुड़ का सेवन करते हैं। इन सभी सामग्रियों में सबसे ज़्यादा महत्व तिल का दिया गया है। इस दिन कुछ अन्य चीज़ भले ही न खाई जाएँ, किन्तु किसी न किसी रूप में तिल अवश्य खाना चाहिए। इस दिन तिल के महत्व के कारण मकर संक्रांति पर्व को 'तिल संक्राति' के नाम से भी पुकारा जाता है। तिल के गोल-गोल लड्डू इस दिन बनाए जाते हैं। ऐसा माना जाता है कि तिल की उत्पत्ति भगवान विष्णु के शरीर से हुई है तथा उपरोक्त उत्पादों का प्रयोग सभी प्रकार के पापों से मुक्त करता है(गर्मी देता है और शरीर को निरोग रखता है। मंकर संक्रांति में जिन चीज़ों को खाने में शामिल किया जाता है, वह पौष्टिक होने के साथ ही साथ शरीर को गर्म रखने वाले पदार्थ भी हैं।

सूर्य के उत्तरायण होने का पर्व

जितने समय में पृथ्वी सूर्य के चारों ओर एक चक्कर लगाती है, उस अवधि को 'सौर वर्ष' कहते हैं। पृथ्वी का गोलाई में सूर्य के चारों ओर घूमना 'क्रान्तिचक्र' कहलाता है। इस परिधि चक्र को बाँटकर बारह राशियाँ बनी हैं। सूर्य का एक राशि से दूसरी राशि में प्रवेश करना 'संक्रान्ति' कहलाता है। इसी प्रकार सूर्य के मकर राशि में प्रवेश करने को 'मकर संक्रान्ति' कहते हैं। इसी उत्तरायण सूर्य की प्रतीक्षा महाभारत युद्ध में मृत्यु का वरन करने के लिए गंगापुत्र भीष्म ने किया था। सूर्य का मकर रेखा से उत्तरी कर्क रेखा की ओर जाना 'उत्तरायण' तथा कर्क रेखा से दक्षिणी मकर रेखा की ओर जाना 'दक्षिणायन' है। उत्तरायण में दिन बड़े हो जाते हैं तथा रातें छोटी होने लगती हैं। दक्षिणायन में ठीक इसके विपरीत होता है। शास्त्रों के अनुसार उत्तरायण देवताओं का दिन तथा दक्षिणायन देवताओं की रात होती है। वैदिक काल में उत्तरायण को देवयान तथा दक्षिणायन को पितृयान कहा जाता था। मकर संक्रान्ति के दिन यज्ञ में दिये हव्य को ग्रहण करने के लिए देवता धरती पर अवतरित होते हैं। इसी मार्ग से पुण्यात्माएँ शरीर छोड़कर स्वर्ग आदि लोकों में प्रवेश करती हैं। इसलिए यह आलोक का अवसर माना जाता है। इस दिन पुण्य, दान, जप तथा धार्मिक अनुष्ठानों का अनन्य महत्त्व है और सौ गुणा फलदायी होकर प्राप्त होता है। मकर संक्रान्ति प्रत्येक वर्ष प्रायः 14 जनवरी को पड़ती है।

आभार प्रकट करने का दिन

पंजाब, बिहार व तमिलनाडु में यह समय फ़सल काटने का होता है। कृषक मकर संक्रान्ति को 'आभार दिवस' के रूप में मनाते हैं। पके हुए गेहूँ और धान को स्वर्णिम आभा उनके अथक मेहनत और प्रयास का ही फल होती है और यह सम्भव होता है, भगवान व प्रकृति के आशीर्वाद से। विभिन्न परम्पराओं व रीति–रिवाज़ों के अनुरूप पंजाब एवं जम्मू–कश्मीर में 'लोहड़ी' नाम से 'मकर संक्रान्ति' पर्व मनाया जाता है। सिन्धी समाज एक दिन पूर्व ही मकर संक्रान्ति को 'लाल लोही' के रूप में मनाता है। तमिलनाडु में मकर

संक्रान्ति 'पोंगल' के नाम से मनाया जाता है, तो उत्तर प्रदेश और बिहार में 'खिचड़ी' के नाम से मकर संक्रान्ति मनाया जाता है। इस दिन कहीं खिचड़ी तो कहीं चूड़ादही का भोजन किया जाता है तथा तिल के लड्डु बनाये जाते हैं। ये लड्डू मित्र व सगे सम्बन्धियों में बाँटें भी जाते हैं।

खिचड़ी संक्रान्ति

चावल व मूंग की दाल को पकाकर खिचड़ी बनाई जाती है। इस दिन खिचड़ी खाने का प्रचलन व विधान है। घी व मसालों में पकी खिचड़ी स्वादिष्ट, पाचक व ऊर्जा से भरपूर होती है। इस दिन से शरद ऋतु क्षीण होनी प्रारम्भ हो जाती है। बसन्त के आगमन से स्वास्थ्य का विकास होना प्रारम्भ होता है। इस दिन गंगा नदी में स्नान व सूर्योपासना के बाद ब्राह्मणों को गुड़, चावल और तिल का दान भी अति श्रेष्ठ माना गया है। महाराष्ट्र में ऐसा माना जाता है कि मकर संक्रान्ति से सूर्य की गति तिल–तिल बढ़ती है, इसीलिए इस दिन तिल के विभिन्न मिष्ठान बनाकर एक–दूसरे का वितरित करते हुए शुभ कामनाएँ देकर यह त्योहार मनाया जाता है।

संक्रान्ति दान और पुण्यकर्म का दिन

संक्रान्ति काल अति पुण्य माना गया है। इस दिन गंगा तट पर स्नान व दान का विशेष महत्त्व है। इस दिन किए गए अच्छे कर्मों का फल अति शुभ होता है। वस्त्रों व कम्बल का दान, इस जन्म में नहीं(अपितु जन्म–जन्मांतर में भी पुण्यफलदायी माना जाता है। इस दिन घृत, तिल व चावल के दान का विशेष महत्त्व है। इसका दान करने वाला सम्पूर्ण भोगों को भोगकर मोक्ष को प्राप्त करता है, ऐसा शास्त्रों में कहा गया है। उत्तर प्रदेश में इस दिन तिल दान का विशेष महत्त्व है। महाराष्ट्र में नवविवाहिता स्त्रियाँ प्रथम संक्रान्ति पर तेल, कपास, नमक आदि वस्तुएँ सौभाग्यवती स्त्रियों को भेंट करती हैं। बंगाल में भी इस दिन तिल दान का महत्त्व है। राजस्थान में सौभाग्यवती स्त्रियाँ इस दिन तिल के लड्डू, घेवर तथा मोतीचूर के लड्डू आदि पर रुपये रखकर, 'वायन' के रूप में अपनी सास को प्रणाम करके देती है तथा किसी भी वस्तु का चौदह की संख्या में संकल्प करके चौदह ब्राह्मणों को दान करती है।

पतंग

यह दिन सुन्दर पतंगों को उड़ाने का दिन भी माना जाता है। लोग बड़े उत्साह से पतंगें उड़ाकर पतंगबाज़ी के दाँव–पेचों का मज़ा लेते हैं। बड़े–बड़े शहरों में ही नहीं, अब गाँवों में भी पतंगबाज़ी की प्रतियोगिताएँ होती हैं।

गंगास्नान व सूर्य पूजा

पवित्र गंगा में नहाना व सूर्य उपासना संक्रान्ति के दिन अत्यन्त पवित्र कर्म माने गए हैं। संक्रान्ति के पावन अवसर पर हज़ारों लोग इलाहाबाद के त्रिवेणी संगम, वाराणसी में गंगाघाट, हरियाणा में कुरुक्षेत्र, राजस्थान में पुष्कर, महाराष्ट्र के नासिक में गोदावरी नदी में स्नान करते हैं। गुड़ व श्वेत तिल के पकवान सूर्य को अर्पित कर सभी में बाँटें जाते हैं। गंगासागर में पवित्र स्नान के लिए इन दिनों श्रद्धालुओं की एक बड़ी भीड़ उमड़ पड़ती है।

पुण्यकाल के शुभारम्भ का प्रतीक

मकर संक्रान्ति के आगामी दिन जब सूर्य की गति उत्तर की ओर होती है, तो बहुत से पर्व प्रारम्भ होने लगते हैं। इन्हीं दिनों में ऐसा प्रतीत होता है कि वातावरण व पर्यावरण स्वयं ही अच्छे होने लगे हैं। कहा जाता है कि इस समय जन्मे शिशु प्रगतिशील विचारों के, सुसंस्कृत, विनम्र स्वभाव के तथा अच्छे विचारों से पूर्ण होते हैं। यही विशेष कारण है, जो सूर्य की उत्तरायण गति को पवित्र बनाते हैं और मकर संक्रान्ति का दिन सबसे पवित्र दिन बन जाता है।

खगोलीय तथ्य

सन 2012 में मकर संक्रांति 15 जनवरी यानी रविवार की थी। राजा हर्षवर्द्धन के समय में यह पर्व 24 दिसम्बर को पड़ा था। मुग़ल बादशाह अकबर के शासन काल में 10 जनवरी को मकर संक्रांति थी। शिवाजी के जीवन काल में यह त्योहार 11 जनवरी को पड़ा था।

आखिर ऐसा क्यों?

सूर्य के धनु राशि से मकर राशि में प्रवेश करने को 'मकर संक्रांति' कहा जाता है। साल 2012 में यह 14 जनवरी की मध्यरात्रि में था। इसलिए उदय तिथि के अनुसार मकर संक्रांति 15 जनवरी को पड़ी थी। दरअसल हर साल सूर्य का धनु राशि से मकर राशि में प्रवेश 20 मिनट की देरी से होता है। इस तरह हर तीन साल के बाद सूर्य एक घंटे बाद और हर 72 साल में एक दिन की देरी से मकर राशि में प्रवेश करता है। मतलब 1728 (72 गुणा 24) साल में फिर सूर्य का मकर राशि में प्रवेश एक दिन की देरी से होगा और इस तरह 2080 के बाद 'मकर संक्रांति' 15 जनवरी को पड़ेगी।

ज्योतिषीय आकलन

ज्योतिषीय आकलन के अनुसार सूर्य की गति प्रतिवर्ष 20 सेकेंड बढ़ रही है। माना जाता है कि आज से 1000 साल पहले मकर संक्रांति 31 दिसंबर को मनाई जाती थी। पिछले एक हज़ार साल में इसके दो हफ्ते आगे खिसक जाने की वजह से 14 जनवरी को मनाई जाने लगी। अब सूर्य की चाल के आधार पर यह अनुमान लगाया जा रहा है कि 5000 साल बाद मकर संक्रांति फ़रवरी महीने के अंत में मनाई जाएगी।

विभिन्न राज्यों में मकर संक्रांति

मकर संक्रान्ति भारत के भिन्न-भिन्न लोगों के लिए भिन्न-भिन्न अर्थ रखती है। किन्तु सदा की भाँति, नानाविधी उत्सवों को एक साथ पिरोने वाला एक सर्वमान्य सूत्र है, जो इस अवसर को अंकित करता है। यदि दीपावली ज्योति का पर्व है तो संक्रान्ति शस्य पर्व है, नई फ़सल का स्वागत करने तथा समृद्धि व सम्पन्नता के लिए प्रार्थना

करने का एक अवसर है।

उत्तर प्रदेश में मकर–सक्रांति

उत्तर प्रदेश में यह मुख्य रूप से दान का पर्व है। इलाहाबाद में यह पर्व माघ मेले के नाम से जाना जाता है। 14 जनवरी से इलाहाबाद मे हर साल माघ मेले की शुरुआत होती है। 14 दिसम्बर से 14 जनवरी का समय खर मास के नाम से जाना जाता है। और उत्तर भारत मे तो पहले इस एक महीने मे किसी भी अच्छे कार्य को अंजाम नही दिया जाता था। मसलन विवाह आदि मंगल कार्य नहीं किए जाते थे पर अब तो समय के साथ लोग काफ़ी बदल गए है। 14 जनवरी यानी मकर संक्रान्ति से अच्छे दिनों की शुरुआत होती है। माघ मेला पहला नहान मकर संक्रान्ति से शुरू होकर शिवरात्रि तक यानी आख़िरी नहान तक चलता है। संक्रान्ति के दिन नहान के बाद दान करने का भी चलन है।समूचे उत्तर प्रदेश में इस व्रत को खिचड़ी के नाम से जाना जाता है और इस दिन खिचड़ी सेवन एवं खिचड़ी दान का अत्यधिक महत्व होता है। इलाहाबाद में गंगा, यमुना व सरस्वती के संगम पर प्रत्येक वर्ष एक माह तक माघ मेला लगता है।

उत्तराखंड में मकर–सक्रांति

उत्तराखंड के बागेश्वर में बड़ा मेला होता है। वैसे गंगा स्नान रामेश्वर, चित्रशिला व अन्य स्थानों में भी होते हैं। इस दिन गंगा स्नान करके, तिल के मिष्ठान आदि को ब्राह्मणों व पूज्य व्यक्तियों को दान दिया जाता है। इस पर्व पर भी क्षेत्र में गंगा एवं रामगंगा घाटों पर बड़े मेले लगते है।

महाराष्ट्र में मकर–सक्रांति

महाराष्ट्र में इस दिन सभी विवाहित महिलाएं अपनी पहली संक्रांति पर कपास, तेल, नमक आदि चीजें अन्य सुहागिन महिलाओं को दान करती हैं। ताल-गूल नामक हलवे के बांटने की प्रथा भी है। लोग एक दूसरे को तिल गुड़ देते हैं और देते समय बोलते हैं :- `तिल गुड़ ध्या आणि गोड़ गोड़ बोला` अर्थात तिल गुड़ लो और मीठा मीठा बोलो। इस दिन महिलाएं आपस में तिल, गुड़, रोली और हल्दी बांटती हैं।

पंजाब में लोहड़ी

मकर संक्रान्ति भारत के अन्य क्षेत्रों में भी धार्मिक उत्साह और उल्लास के साथ मनाया जाता है। पंजाब में इसे 'लोहड़ी' कहते हैं जो ग्रामीण क्षेत्रों में नई फ़सल की कटाई के अवसर पर मनाया जाता है। पुरुष और स्त्रियाँ गाँव के चौक पर उत्सवाग्नि के चारों ओर परम्परागत वेशभूषा में लोकप्रिय नृत्य भांगड़ा का प्रदर्शन करते हैं। स्त्रियाँ इस अवसर पर अपनी हथेलियों और पाँवों पर आकर्षक आकृतियों में मेहंदी रचाती हैं।

बंगाल में मकर-सक्रांति

पश्चिम बंगाल में मकर सक्रांति के दिन देश भर के तीर्थयात्री गंगासागर द्वीप पर एकत्र होते हैं, जहाँ गंगा बंगाल की खाड़ी में मिल जाती है। एक धार्मिक मेला, जिसे 'गंगासागर मेला' कहते हैं, इस समारोह की महत्त्वपूर्ण विशेषता है। ऐसा विश्वास किया जाता है कि इस संगम पर डुबकी लगाने से सारा पाप धुल जाता है। बंगाल में इस

पर्व पर स्नान पश्चात तिल दान करने की प्रथा है। यहां गंगासागर में हर साल विशाल मेला लगता है। मकर संक्रांति के दिन ही गंगाजी भगीरथ के पीछे-पीछे चलकर कपिल मुनि के आश्रम से होकर सागर में जा मिली थीं। मान्यता यह भी है कि इस दिन यशोदा जी ने श्रीकृष्ण को प्राप्त करने के लिए व्रत किया था। इस दिन गंगा सागर में स्नान-दान के लिए लाखों लोगों की भीड़ होती है। लोग कष्ट उठाकर गंगा सागर की यात्रा करते हैं।

कर्नाटक में मकर-सक्रांति

कर्नाटक में भी फ़सल का त्योहार शान से मनाया जाता है। बैलों और गायों को सुसज्जित कर उनकी शोभा यात्रा निकाली जाती है। नये परिधान में सजे नर-नारी, ईख, सूखा नारियल और भुने चने के साथ एक दूसरे का अभिवादन करते हैं। पंतगबाज़ी इस अवसर का लोकप्रिय परम्परागत खेल है।

गुजरात में मकर-सक्रांति

गुजरात का क्षितिज भी संक्रान्ति के अवसर पर रंगबिरंगी पंतगों से भर जाता है। गुजराती लोग संक्रान्ति को एक शुभ दिवस मानते हैं और इस अवसर पर छात्रों को छात्रवृतियाँ और पुरस्कार बाँटते हैं।

केरल में मकर-सक्रांति

केरल में भगवान अयप्पा की निवास स्थली सबरीमाला की वार्षिक तीर्थयात्रा की अवधि मकर संक्रान्ति के दिन ही समाप्त होती है, जब सुदूर पर्वतों के क्षितिज पर एक दिव्य आभा 'मकर ज्योति' दिखाई पड़ती है।

तमिलनाडु में मकर-सक्रांति

तमिलनाडु में इस त्योहार को पोंगल के रूप में चार दिन तक मनाया जाता है।पहले दिन भोगी-पोंगल, दूसरे दिन सूर्य-पोंगल, तीसरे दिन मट्टू-पोंगल अथवा केनू-पोंगल, चौथे व अंतिम दिन कन्या-पोंगल। इस प्रकार पहले दिन कूड़ा करकट इकट्ठा कर जलाया जाता है, दूसरे दिन लक्ष्मी जी की पूजा की जाती है और तीसरे दिन पशु धन की पूजा की जाती है। पोंगल मनाने के लिए स्नान करके खुले आंगन में मिट्टी के बर्तन में खीर बनाई जाती है, जिसे पोंगल कहते हैं। इसके बाद सूर्य देव को नैवैद्य चढ़ाया जाता है। उसके बाद खीर को प्रसाद के रूप में सभी ग्रहण करते हैं। असम में मकर संक्रांति को माघ-बिहू या भोगाली-बिहू के नाम से मनाते हैं। राजस्थान में इस पर्व पर सुहागन महिलाएं अपनी सास को वायना देकर आशीर्वाद लेती हैं। साथ ही महिलाएं किसी भी सौभाग्यसूचक वस्तु का चौदह की संख्या में पूजन व संकल्प कर चौदह ब्राह्मणों को दान देती हैं। अन्य भारतीय त्योहारों की तरह मकर संक्रांति पर भी लोगों में विशेष उत्साह देखने को मिलता है।

मकर संक्रांति पर खान-पान

तिल के लड्डू

मकर संक्रांति में सूर्य का दक्षिणायन से उत्तरायण में आने का स्वागत किया जाता है। शिशिर ऋतु की विदाई और बसंत का अभिवादन तथा अगहनी फ़सल के कट कर घर में आने का उत्सव मनाया जाता है। उत्सव का आयोजन होने पर सबसे पहले खान-पान की चर्चा होती है। मकर संक्रांति पर्व जिस प्रकार देश भर में अलग-अलग तरीक़े और नाम से मनाया जाता है, उसी प्रकार खान-पान में भी विविधता रहती है। किंतु एक विशेष तथ्य यह है कि मकर संक्राति के नाम, तरीक़े और खान-पान में अंतर के बावजूद सभी में एक समानता है कि इसमें व्यंजन तो अलग-अलग होते हैं, किन्तु उनमें प्रयोग होने वाली सामग्री एक-सी होती है। यह महत्त्वपूर्ण पर्व माघ मास में मनाया जाता है। भारत में माघ महीने में सबसे अधिक सर्दी पड़ती है, अतः शरीर को अंदर से गर्म रखने के लिए तिल, चावल, उड़द की दाल एवं गुड़ का सेवन किया जाता है। मकर संक्रांति में इन खाद्य पदार्थों के सेवन का यह भौतिक आधार है। इन खाद्यों के सेवन का धार्मिक आधार भी है। शास्त्रों में लिखा है कि माघ मास में जो व्यक्ति प्रतिदिन विष्णु भगवान की पूजा तिल से करता है और तिल का सेवन करता है, उसके कई जन्मों के पाप कट जाते हैं। अगर व्यक्ति तिल का सेवन नहीं कर पाता है तो सिर्फ तिल-तिल जप करने से भी पुण्य की प्राप्ति होती है। तिल का महत्व मकर संक्रांति में इस कारण भी है कि सूर्य देवता धनु राशि से निकलकर मकर राशि में प्रवेश करते हैं। मकर राशि के स्वामी शनि देव हैं, जो सूर्य के पुत्र होने के बावजूद सूर्य से शत्रु भाव रखते हैं।

अतः शनि देव के घर में सूर्य की उपस्थिति के दौरान शनि उन्हें कष्ट न दें, इसलिए तिल का दान व सेवन मकर संक्रांति में किया जाता है। चावल, गुड़ एवं उड़द खाने का धार्मिक आधार यह है कि इस समय ये फ़सलें तैयार होकर घर में आती हैं। इन फ़सलों को सूर्य देवता को अर्पित करके उन्हें धन्यवाद दिया जाता है कि 'हे देव! आपकी कृपा से यह फ़सल प्राप्त हुई है। अतः पहले आप इसे ग्रहण करें तत्पश्चात प्रसाद स्वरूप में हमें प्रदान करें, जो हमारे शरीर को उष्मा, बल और पुष्टता प्रदान करे।'

राष्ट्रकवि मैथिलीशरण गुप्त, महाविद्यालय, चिरगाँव, झांसी

बुंदलेखण्ड विश्वविद्यालय झाँसी से सम्बद्ध

N.C.T.E & U.G.C. से मान्यता प्राप्त

राष्ट्रकवि मैथिलीशरण गुप्त महाविद्यालय
शैक्षिक एवं आर्थिक रूप से पिछड़े
बुन्देलखण्ड में उच्च शिक्षा
के क्षेत्र में तेजी से बदलते रुझानों को
चुनोतियों का सामना करने के लिए गुणवत्ता
पूर्ण शिक्षा, अनुसंधान , प्रशिक्षण को बढ़ावा
देने के लिए
पद्मभूषण राष्ट्रकवि डॉ. मैथिलीशरण गुप्त
की नगरी चिरगांव झाँसी
में प्रगति पथ पर अग्रसर

R.M.S.G. Mahavidyalaya, Main Road Chirgaon ,
Jhansi , (U.P.) - 284301
+91 8317077026, 8052943391, 8840667403
info@rmsgmahavidyalaya.org
http://rmsgmahavidyalaya.org/

डॉ. वैभव गुप्त
(चेयरमैन)

परिवार का महत्व और उसका बदलता स्वरूप

परिवार दो प्रकार के होते हैं। एक एकाकी परिवार और दूसरा संयुक्त परिवार। भारत में प्राचीन काल से ही संयुक्त परिवार की धारणा रही है। संयुक्त परिवार में वृद्धों को संबल प्रदान होता रहा है और उनके अनुभव व ज्ञान से युवा व बाल पीढ़ी लाभान्वित होती रही है।

देवेन्द्रराज सुथार

“यदि संयुक्त परिवारों को समय रहते नहीं बचाया गया तो हमारी आने वाली पीढ़ी ज्ञान संपन्न होने के बाद भी दिशाहीन होकर विकृतियों में फंसकर अपना जीवन बर्बाद कर देगी। अनुभव का खजाना कहे जाने वाले बुजुर्गों की असली जगह वृद्धाश्राम नहीं बल्कि घर है। छत नहीं रहती, दहलीज नहीं रहती, दर-ओ-दीवार नहीं रहती, वो घर घर नहीं होता, जिसमें कोई बुजुर्ग नहीं होता। ऐसा कौन-सा घर परिवार है जिसमें झगड़े नहीं होते? लेकिन यह मनमुटाव तक सीमित रहे तो बेहतर है।”

परिवार एक ऐसी सामाजिक संस्था है जो आपसी सहयोग व समन्वय से क्रियान्वित होती है और जिसके समस्त सदस्य आपस में मिलकर अपना जीवन प्रेम, स्नेह एवं भाईचारा पूर्वक निर्वाह करते हैं। संस्कार, मर्यादा, सम्मान, समर्पण, आदर, अनुशासन आदि किसी भी सुखी-संपन्न एवं खुशहाल परिवार के गुण होते हैं। कोई भी व्यक्ति परिवार में ही जन्म लेता है, उसी से उसकी पहचान होती है और परिवार से ही अच्छे-बुरे लक्षण सिखता है। परिवार सभी लोगों को जोड़े रखता है और दुःख-सुख में सभी एक-दूसरे का साथ देते हैं। कहते हैं कि परिवार से बड़ा कोई धन नहीं होता हैं, पिता से बड़ा कोई सलाहकार नहीं होता हैं, मां के आंचल से बड़ी कोई दुनिया नहीं, भाई से अच्छा कोई भागीदार नहीं, बहन से बड़ा कोई शुभ चिंतक नहीं इसलिए परिवार के बिना जीवन की कल्पना करना कठिन है। एक अच्छा परिवार बच्चे के चरित्र निर्माण से लेकर व्यक्ति की सफलता में महत्वपूर्ण भूमिका निभाता है।

किसी भी सशक्त देश के निर्माण में परिवार एक आधारभूत संस्था की भांति होता है, जो अपने विकास कार्यक्रमों से दिनोंदिन प्रगति के नए सोपान तय करता है। कहने को तो प्राणी जगत में परिवार एक छोटी इकाई है लेकिन इसकी मजबूती हमें हर बड़ी से बड़ी मुसीबत से बचाने में कारगर है। परिवार से इतर व्यक्ति का अस्तित्व नहीं है इसलिए परिवार को बिना अस्तित्व के कभी सोचा नहीं जा सकता। लोगों से परिवार बनता हैं और परिवार से राष्ट्र और राष्ट्र से विश्व बनता हैं। इसलिए कहा भी जाता है ‘वसुधैव कुटुंबकम्’ अर्थात पूरी पृथ्वी हमारा परिवार है। ऐसी भावना के पीछे परस्पर वैमनस्य, कटुता, शत्रुता व घृणा

को कम करना है। परिवार के महत्व और उसकी उपयोगिता को प्रकट करने के उद्देश्य से प्रतिवर्ष 15 मई को संपूर्ण विश्व में 'अंतर्राष्ट्रीय परिवार दिवस' मनाया जाता है। इस दिन की शुरुआत संयुक्त राष्ट्र अमेरिका ने 1994 को अंतर्राष्ट्रीय परिवार वर्ष घोषित कर की थी। तब से इस दिवस को मनाने का सिलसिला जारी है।

परिवार दो प्रकार के होते हैं। एक एकाकी परिवार और दूसरा संयुक्त परिवार। भारत में प्राचीन काल से ही संयुक्त परिवार की धारणा रही है। संयुक्त परिवार में वृद्धों को संबल प्रदान होता रहा है और उनके अनुभव व ज्ञान से युवा व बाल पीढ़ी लाभान्वित होती रही है। संयुक्त पूंजी, संयुक्त निवास व संयुक्त उत्तरदायित्व के कारण वृद्धों का प्रभुत्व रहने के कारण परिवार में अनुशासन व आदर का माहौल हमेशा बना रहता है। लेकिन बदलते समय में तीव्र औद्योगीकरण, शहरीकरण, आधुनिकीकरण व उदारीकरण के कारण संयुक्त परिवार की परंपरा चरमराने लग गई है। वस्तुतः संयुक्त परिवारों का बिखराव होने लगा है। एकाकी परिवारों की जीवनशैली ने दादा-दादी और नाना-नानी की गोद में खेलने व लोरी सुनने वाले बच्चों का बचपन छीनकर उन्हें मोबाइल का आदी बना दिया है। उपभोक्तावादी संस्कृति, अपरिपक्वता, व्यक्तिगत आकांक्षा, स्वकेंद्रित विचार, व्यक्तिगत स्वार्थ सिद्धि, लोभी मानसिकता, आपसी मनमुटाव और सामंजस्य की कमी के कारण संयुक्त परिवार की संस्कृति छिन्न-भिन्न हुई है। गांवों में रोजगार का अभाव होने के कारण अक्सर एक बड़ी आबादी का विस्थापन शहरों की ओर गमन करता है। शहरों में भीड़भाड़ रहने के कारण बच्चे अपने माता-पिता को चाहकर भी पास नहीं रख पाते हैं। यदि रख भी ले तो वे शहरी जीवन के अनुसार खुद को ढाल नहीं पाते हैं। गांवों की खुली हवा में सांस लेने वाले लोगों का शहरी की संकरी गलियों में दम घुटने लगता है।

इसके अलावा पश्चिमी संस्कृति का प्रभाव बढ़ने के कारण आधुनिक पीढ़ी का अपने बुजुर्गों व अभिभावकों के प्रति आदर कम होने लगा है। वृद्धावस्था में अधिकतर बीमार रहने वाले माता-पिता अब उन्हें बोझ लगने लगे हैं। वे अपने संस्कारों और मूल्यों से कटकर एकाकी जीवन को ही अपनी असली खुशी व आदर्श मान बैठे हैं। देश में 'ओल्ड एज होम' की बढ़ती संख्या इशारा कर रही है कि भारत में संयुक्त परिवारों को बचाने के लिए एक स्वस्थ सामाजिक परिप्रेक्ष्य की नितांत आवश्यकता है। वहीं महंगाई बढ़ने के कारण परिवार के एक-दो सदस्यों पर पूरे घर को चलाने की जिम्मेदारी आने के कारण आपस में हीन भावना पनपने लगी है। कमाने वाले सदस्य की पत्नी की व्यक्तिगत इच्छाएं व सपने पूरे नहीं होने के कारण वह अलग होना ही हितकर समझ बैठी है। इसके अलावा बुजुर्ग वर्ग और आधुनिक पीढ़ी के विचार मेल नहीं खा पाते हैं। बुजुर्ग पुराने जमाने के अनुसार जीना पसंद करते हैं तो युवा वर्ग आज की स्टाइलिश लाइफ जीना चाहते हैं। इसी वजह से दोनों के बीच संतुलन की कमी दिखती है, जो परिवार के टूटने का कारण बनती है।

यदि संयुक्त परिवारों को समय रहते नहीं बचाया गया तो हमारी आने वाली पीढ़ी ज्ञान संपन्न होने के बाद भी दिशाहीन होकर विकृतियों में फंसकर अपना जीवन बर्बाद कर देगी। अनुभव का खजाना कहे जाने वाले बुजुर्गों की असली जगह वृद्धाश्राम नहीं बल्कि घर है। छत नहीं रहती, दहलीज नहीं रहती, दर-ओ-दीवार नहीं रहती, वो घर घर नहीं होता, जिसमें कोई बुजुर्ग नहीं होता। ऐसा कौन-सा घर परिवार है जिसमें झगड़े नहीं होते? लेकिन यह मनमुटाव तक सीमित रहे तो बेहतर है। मनभेद कभी नहीं बनने दिया जाए। बुजुर्ग वर्ग को भी चाहिए कि वह नए जमाने के साथ अपनी पुरानी धारणाओं को परिवर्तित कर आधुनिक परिवेश के मुताबिक जीने का प्रयास करें।

●●●

आलेख

स्वस्थ जीवन के लिए जरुरी है ब्रह्म मुहूर्त में उठ जाना

डॉ सरोज तिवारी

भारतीय संस्कृति में परिवार का आधार तत्व रहा है पारिवारिक अनुशासन। यह ऐसा अनुशासन था जिससे परिवार की नयी पीढ़ी में नयी ऊर्जा का संचार होता था। परिवार के बच्चे तो हमेशा ही बड़ों का अनुशरण करते हैं लेकिन जब बड़ो में ही अनुशासन का आभाव हो तब बच्चे किससे सीखें। इस बात को केवल एक उदाहरण से समझने की आवश्यकता है।

“ब्रह्म मुहूर्त में उठने वाला व्यक्ति सफल, सुखी और समृद्ध होता है, क्योंकि जल्दी उठने से दिनभर के कार्यों और योजनाओं को बनाने के लिए पर्याप्त समय मिल जाता है। इसलिए न केवल जीवन सफल होता है। शारीरिक और मानसिक रूप से स्वस्थ रहने वाला हर व्यक्ति सुखी और समृद्ध हो सकता है।”

(लेखिका सरस्वती शिशुमंदिर बालिका विद्यालय गोरखपुर में प्राचार्य हैं।)

पहले हर घर में जो बुजुर्ग लोग होते थे वे इस बात का विशेष ध्यान रखते थे कि घर के बच्चो में अच्छे संस्कार विकसित हों इसके लिए उनके रहन सहन , खान पान और हर क्रियाकलाप पर विशेष नजर राखी जाती थी। इसमें बच्चो को सुबह समय से जगाने का कार्य बहुत महत्वपूर्ण होता था। अब यह जानने की आवश्यकता है कि सभी को सुबह सुबह जगा देने के पीछे वजह क्या थी। आखिर सुबह के जगाने को इतना महत्वपूर्ण क्यों माना जाता था।

इस प्रश्न के उत्तेर स्वरुप यह जान लेना जरुरी है कि प्रातः जागरण केवल एक प्रक्रिया भर नहीं होती बल्कि इसमें स्वास्थ्य विज्ञान का बहुत महत्वपूर्ण मन्त्र छिपा है। हमारे बुजुर्ग इसके महत्त्व को समझते थे। इसीलिए घर में प्रातः जागरण को बहुत अहमियत दी जाती थी। यहां यह जान लेना आवश्यक है कि रात्रि के अंतिम प्रहर के बाद के समय को ब्रह्म मुहूर्त कहते हैं। हमारे ऋषि मुनियों ने इस मुहूर्त का विशेष महत्व बताया है। उनके अनुसार यह समय निद्रा त्याग के लिए सर्वोत्तम है। ब्रह्म मुहूर्त में उठने से सौंदर्य, बल, विद्या, बुद्धि और स्वास्थ्य की प्राप्ति होती है। सूर्योदय से चार घड़ी (लगभग डेढ़ घण्टे) पूर्व ब्रह्म मुहूर्त में ही जग जाना चाहिये। इस समय सोना शास्त्र निषिद्ध है। ब्रह्म मुहूर्त यानी अनुकूल समय। रात्रि का अंतिम प्रहर अर्थात प्रातः 4 से 5।30 बजे का समय ब्रह्म मुहूर्त कहा गया है।

ब्रह्ममुहूर्ते या निद्रा सा पुण्यक्षयकारिणी।

(ब्रह्ममुहूर्त की निद्रा पुण्य का नाश करने वाली होती है।)

सिख पंथ में इस समय के लिए बेहद सुन्दर नाम है-अमृत वेला। ईश्वर भक्ति के लिए यह महत्व स्वयं ही साबित हो जाता है। ईश्वर भक्ति के लिए यह सर्वश्रेष्ठ समय है। इस समय उठने से मनुष्य को सौंदर्य, लक्ष्मी, बुद्धि, स्वास्थ्य आदि की प्राप्ति होती है। उसका मन शांत और तन पवित्र होता है। ब्रह्म मुहूर्त में उठना हमारे जीवन के लिए बहुत लाभकारी है। इससे हमारा शरीर स्वस्थ होता है और दिनभर स्फूर्ति बनी रहती है। स्वस्थ रहने और सफल होने का यह ऐसा फार्मूला है जिसमें खर्च कुछ नहीं होता। केवल आलस्य छोड़ने की जरूरत है।

पौराणिक महत्व

वाल्मीकि रामायण के अनुसार श्रीहनुमान ब्रह्ममुहूर्त में ही अशोक वाटिका पहुंचे। जहां उन्होंने वेद मंत्रो का पाठ करते माता सीता को

सुना शास्त्रों में भी इसका उल्लेख है-

वर्णं कीर्तिं मतिं लक्ष्मीं स्वास्थ्यमायुश्च विदन्ति।
ब्राह्मे मुहूर्ते संजाग्रच्छि वा पंकज यथा॥

अर्थात- ब्रह्म मुहूर्त में उठने से व्यक्ति को सुंदरता, लक्ष्मी, बुद्धि, स्वास्थ्य, आयु आदि की प्राप्ति होती है। ऐसा करने से शरीर कमल की तरह सुंदर हो जाता हे।

ब्रह्म मुहूर्त और प्रकृति

ब्रह्म मुहूर्त और प्रकृति का गहरा नाता है। इस समय में पशु-पक्षी जाग जाते हैं। उनका मधुर कलरव शुरू हो जाता है। कमल का फूल भी खिल उठता है। मुर्गे बांग देने लगते हैं। एक तरह से प्रकृति भी ब्रह्म मुहूर्त में चैतन्य हो जाती है। यह प्रतीक है उठने, जागने का। प्रकृति हमें संदेश देती है ब्रह्म मुहूर्त में उठने के लिए।

सफलता व समृद्धि

आयुर्वेद के अनुसार ब्रह्म मुहूर्त में उठकर टहलने से शरीर में संजीवनी शक्ति का संचार होता है। यही कारण है कि इस समय बहने वाली वायु को अमृततुल्य कहा गया है। इसके अलावा यह समय अध्ययन के लिए भी सर्वोत्तम बताया गया है क्योंकि रात को आराम करने के बाद सुबह जब हम उठते हैं तो शरीर तथा मस्तिष्क में भी स्फूर्ति व ताजगी बनी रहती है-

ब्रह्ममुहूर्त के धार्मिक, पौराणिक व व्यावहारिक पहलुओं और लाभ को जानकर हर रोज इस शुभ घड़ी में जागना शुरू करें तो बेहतर नतीजे मिलेंगे।

ब्रह्म मुहूर्त में उठने वाला व्यक्ति सफल, सुखी और समृद्ध होता है, क्योंकि जल्दी उठने से दिनभर के कार्यों और योजनाओं को बनाने के लिए पर्याप्त समय मिल जाता है। इसलिए न केवल जीवन सफल होता है। शारीरिक और मानसिक रूप से स्वस्थ रहने वाला हर व्यक्ति सुखी और समृद्ध हो सकता है। कारण वह जो काम करता है उसमें उसकी प्रगति होती है। विद्यार्थी परीक्षा में सफल रहता है। जॉब (नौकरी) करने वाले से बॉस खुश रहता है। बिजनेसमैन अच्छी कमाई कर सकता है। बीमार आदमी की आय तो प्रभावित होती ही है, उल्टे खर्च बढने लगता है। सफलता उसी के कदम चूमती है जो समय का सदुपयोग करे और स्वस्थ रहे। अतः स्वस्थ और सफल रहना है तो ब्रह्म मुहूर्त में उठें।

वेदों में भी ब्रह्म मुहूर्त का महत्त्व

प्रातारत्नं प्रातरिष्वा दधाति तं चिकित्वा प्रतिगृह्यनिधत्तो।
तेन प्रजां वर्धयमान आयू रायस्पोषेण सचेत सुवीरः॥

- ऋग्वेद-1/125/1

अर्थात- सुबह सूर्य उदय होने से पहले उठने वाले व्यक्ति का स्वास्थ्य अच्छा रहता है। इसीलिए बुद्धिमान लोग इस समय को व्यर्थ नहीं गंवाते। सुबह जल्दी उठने वाला व्यक्ति स्वस्थ, सुखी, ताकतवाला और दीर्घायु होता है।

यद्य सूर उदितोऽनागा मित्रोऽर्यमा। सुवाति सविता भगः॥

- सामवेद-35

अर्थात- व्यक्ति को सुबह सूर्योदय से पहले शौच व स्नान कर लेना चाहिए। इसके बाद भगवान की उपासना करना चाहिए। इस समय की शुद्ध व निर्मल हवा से स्वास्थ्य और संपत्ति की वृद्धि होती है।

उद्यन्त्सूर्य इव सुप्तानां द्विषतां वर्च आददे।

अथर्ववेद- 7/16/२

अर्थात- सूरज उगने के बाद भी जो नहीं उठते या जागते उनका तेज खत्म हो जाता है।

व्यावहारिक महत्व

व्यावहारिक रूप से अच्छी सेहत, ताजगी और ऊर्जा पाने के लिए ब्रह्ममुहूर्त बेहतर समय है। क्योंकि रात की नींद के बाद पिछले दिन की शारीरिक और मानसिक थकान उतर जाने पर दिमाग शांत और स्थिर रहता है। वातावरण और हवा भी स्वच्छ होती है!

जैविक घड़ी पर आधारित शरीर की दिनचर्या

प्रातः 3 से 5 बजे

इस समय जीवनी-शक्ति विशेष रूप से फेफड़ों में होती है। थोड़ा गुनगुना पानी पीकर खुली हवा में घूमना एवं प्राणायाम करना। इस समय दीर्घ श्वसन करने से फेफड़ों की कार्यक्षमता खूब विकसित होती है। उन्हें शुद्ध वायु (आक्सीजन) और ऋण आयन विपुल मात्रा में मिलने से शरीर स्वस्थ व स्फूर्तिमान होता है। ब्रह्म मुहूर्त में उठने वाले लोग बुद्धिमान व उत्साही होते है, और सोते रहने वालों का जीवन निस्तेज हो जाता है।

प्रातः 5 से 7 बजे

इस समय जीवनी-शक्ति विशेष रूप से आंत में होती है। प्रातः जागरण से लेकर सुबह 7 बजे के बीच मल-त्याग एवं स्नान का

लेना चाहिए । सुबह 7 के बाद जो मल-त्याग करते है उनकी आँतें मल में से त्याज्य द्रवांश का शोषण कर मल को सुखा देती हैं। इससे कब्ज तथा कई अन्य रोग उत्पन्न होते हैं।

प्रातः 7 से 9 बजे

इस समय जीवनी-शक्ति विशेष रूप से आमाशय में होती है। यह समय भोजन के लिए उपर्युक्त है । इस समय पाचक रस अधिक बनते हैं। भोजन के बीच-बीच में गुनगुना पानी (अनुकूलता अनुसार) घूँट-घूँट पिये।

प्रातः 11 से 1 बजे

इस समय जीवनी-शक्ति विशेष रूप से हृदय में होती है।

दोपहर 12 बजे के आस–पास

इस अवधि में मध्याह्न – संध्या (आराम) करने की हमारी संस्कृति में विधान है। इसी लिए भोजन वर्जित है । इस समय तरल पदार्थ ले सकते है। जैसे मट्ठा पी सकते है। दही खा सकते है ।

दोपहर 1 से 3 बजे

इस समय जीवनी-शक्ति विशेष रूप से छोटी आंत में होती है। इसका कार्य आहार से मिले पोषक तत्त्वों का अवशोषण व व्यर्थ पदार्थों को बड़ी आँत की ओर धकेलना है। भोजन के बाद प्यास अनुरूप पानी पीना चाहिए । इस समय भोजन करने अथवा सोने से पोषक आहार-रस के शोषण में अवरोध उत्पन्न होता है व शरीर रोगी तथा दुर्बल हो जाता है ।

दोपहर 3 से 5बजे

इस समय जीवनी-शक्ति विशेष रूप से मूत्राशय में होती है । 2-4 घंटे पहले पिये पानी से इस समय मूत्र-त्याग की प्रवृति होती है।

शाम 5 से 7 बजे

इस समय जीवनी-शक्ति विशेष रूप से गुर्दे में होती है । इस समय हल्का भोजन कर लेना चाहिए । शाम को सूर्यास्त से 40 मिनट पहले भोजन कर लेना उत्तम रहेगा। सूर्यास्त के 10 मिनट पहले से 10 मिनट बाद तक (संध्याकाल) भोजन न करे। शाम को भोजन के तीन घंटे बाद दूध पी सकते है । देर रात को किया गया भोजन सुस्ती लाता है यह अनुभवगम्य है।

रात्रि 7 से 9 बजे

इस समय जीवनी-शक्ति विशेष रूप से मस्तिष्क में होती है । इस समय मस्तिष्क विशेष रूप से सक्रिय रहता है । अतः प्रातःकाल के अलावा इस काल में पढ़ा हुआ पाठ जल्दी याद रह जाता है । आधुनिक अन्वेषण से भी इसकी पुष्टी हुई है।

रात्रि 9 से 11बजे

इस समय जीवनी-शक्ति विशेष रूप से रीढ़ की हड्डी में स्थित मेरुरज्जु में होती है। इस समय पीठ के बल या बायीं करवट लेकर विश्राम करने से मेरूरज्जु को प्राप्त शक्ति को ग्रहण करने में मदद मिलती है। इस समय की नींद सर्वाधिक विश्रांति प्रदान करती है । इस समय का जागरण शरीर व बुद्धि को थका देता है । यदि इस समय भोजन किया जाय तो वह सुबह तक जठर में पड़ा रहता है, पचता नहीं और उसके सड़ने से हानिकारक द्रव्य पैदा होते हैं जो अम्ल (एसिड) के साथ आँतों में जाने से रोग उत्पन्न करते हैं। इसलिए इस समय भोजन करना खतरनाक है।

रात्रि 11 से 1बजे

इस समय जीवनी-शक्ति विशेष रूप से पित्ताशय में होती है । इस समय का जागरण पित्त-विकार, अनिद्रा , नेत्ररोग उत्पन्न करता है व बुढ़ापा जल्दी लाता है । इस समय नई कोशिकाएं बनती है ।

रात्रि 1 से 3बजे

इस समय जीवनी-शक्ति विशेष रूप से लीवर में होती है । अन्न का सूक्ष्म पाचन करना यह यकृत का कार्य है। इस समय का जागरण यकृत (लीवर) व पाचन-तंत्र को बिगाड़ देता है । इस समय यदि जागते रहे तो शरीर नींद के वशीभूत होने लगता है, दृष्टि मंद होती है और शरीर की प्रतिक्रियाएं मंद होती हैं। अतः इस समय सड़क दुर्घटनाएँ अधिक होती हैं।

ऋषियों व आयुर्वेदाचार्यों ने बिना भूख लगे भोजन करना वर्जित बताया है। अतः प्रातः एवं शाम के भोजन की मात्रा ऐसी रखे, जिससे ऊपर बताए भोजन के समय में खुलकर भूख लगे। जमीन पर कुछ बिछाकर सुखासन में बैठकर ही भोजन करें। इस आसन में मूलाधार चक्र सक्रिय होने से जठराग्नि प्रदीप्त रहती है। कुर्सी पर बैठकर भोजन करने में पाचनशक्ति कमजोर तथा खड़े होकर भोजन करने से तो बिल्कुल नहींवत् हो जाती है। इसलिए बुफे डिनर से बचना चाहिए। पृथ्वी के चुम्बकीय क्षेत्र का लाभ लेने हेतु सिर पूर्व या दक्षिण दिशा में करके ही सोयें, अन्यथा अनिद्रा जैसी तकलीफें होती हैं। शरीर की जैविक घड़ी को ठीक ढंग से चलाने हेतु रात्रि को बत्ती बंद करके सोयें। इस संदर्भ में हुए शोध चौंकाने वाले हैं। देर रात तक कार्य या अध्ययन करने से और बत्ती चालू रख के सोने से जैविक घड़ी निष्क्रिय होकर भयंकर स्वास्थ्य-संबंधी हानियाँ होती हैं। अँधेरे में सोने से यह जैविक घड़ी ठीक ढंग से चलती है। आजकल पाये जाने वाले अधिकांश रोगों का कारण अस्त-व्यस्त दिनचर्या व विपरीत आहार ही है। हम अपनी दिनचर्या शरीर की जैविक घड़ी के अनुरूप बनाये रखें तो शरीर के विभिन्न अंगों की सक्रियता का हमें अनायास ही लाभ मिलेगा। इस प्रकार थोड़ी-सी सजगता हमें स्वस्थ जीवन की प्राप्ति होती है।

●●●

सशक्त मातृत्व से ही बनेगा समर्थ राष्ट्र

डॉ अर्चना तिवारी

मानव निर्माण की प्रथम प्रयोगशाला परिवार तो होता है लेकिन माता से प्राप्त गुणों के आधार पर ही सक्षम पुरुष विकसित होता है। मातृ कोख से निर्मित यही पुरुष घर, परिवार, कुटुम्ब, समाज, राज्य और राष्ट्र का निर्माण करता है। स्पष्ट है कि सक्षम एवं सशक्त मातृत्व से ही सक्षम एवं सशक्त राष्ट्र का निर्माण संभव है। तात्पर्य यह कि परिवार की धुरी में उपस्थित नारी जब मातृत्व का श्रृंगार करती है तभी अंगारवान राष्ट्र उभरता है।

> **भारत की नारी सदा अपने पति में राम के दर्शन करती रही है। हमारे यह सांस्कृतिक मूल्य इस पतन की अवस्था में भी सुरक्षित रहे। मुस्लिम काल में हिंदू समाज के कई संप्रदायों ने महिलाओं को पर्दे में रखना शुरू कर दिया। यह पर्दा प्रथा मुस्लिम समाज के आतंक से बचने के लिए जारी की गयी जो आज तक कई स्थानों पर एक रूढि. बनकर समाज के गले की फांसी बनी हुई है।**

ऐसी व्यवस्था हमारे यहां हजारों साल से रही भी है। यह अलग बात है कि विगत लगभग एक हजार वर्षों में भारत पर हुए आक्रमणों और बाहर की सभ्यताओं के प्रभाव ने हमारी व्यवस्था को काफी हद तक प्रभावित किया और समाज में स्त्री की दशा दयनीय बन गयी। जो हमारे लिए पूज्य थी उसे बाहर की सभ्यतओं ने केवल भोग्या बनाकर स्थापित कर दिया और इसी का नतीजा है कि स्त्री की दशा दिन-प्रतिदिन खराब होती गयी। यही कारण था जिसने सती प्रथा, पर्दा प्रथा, तलाक आदि को प्रचलित किया और स्त्री शोषण का बर्बर दौर शुरू हो गया।

आज वह स्थिति नहीं है। अब पुनः हमारी नारी शक्ति को सामाजिक, आर्थिक, शैक्षिक, राजनीतिक सम्मान मिलने लगा है और उसकी स्थिति में काफी बदलाव भी आया है। महिला सशक्तिकरण की बात समाज में रह-रहकर उठती रही है। महिला सशक्तिकरण का अर्थ कुछ इस प्रकार लगाया जाता है कि जैसे महिलाओं को किसी वर्ग विशेषकर पुरुष वर्ग का सामना करने के लिए सुदृढ़ किया जा रहा है। भारतीय समाज में प्राचीनकाल से ही नारी को पुरुष के समान अधिकार प्रदान किए गए हैं। उसे अपने जीवन की गरिमा को सुरक्षित रखने और सम्मानित जीवन जीने का पूर्णअधिकार प्रदान किया गया। यहां तक कि शिक्षा और ज्ञान विज्ञान के क्षेत्र में भी महिलाओं को अपनी प्रतिभा को निखारने और मुखरित करने की पूर्ण स्वतंत्रता प्रदान की गयी। महाभारत काल के बाद नारी की इस स्थिति में गिरावट आई। उससे शिक्षा का मौलिक अधिकार छीन लिया गया। धीरे-धीरे हम शूद्र, गंवार, पशु और नारी को ताडने के समान स्तर पर रखने की स्थिति तक आ गए। जबकि शूद्र, गंवार,

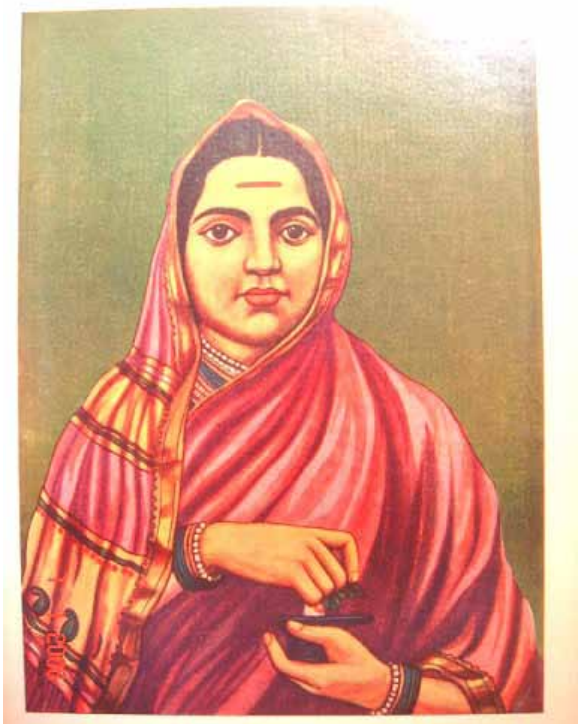

ये प्रताडऩा के नहीं अपितु ये तारन के अधिकारी हैं। इनका कल्याण होना चाहिए।

भारत की नारी सदा अपने पति में राम के दर्शन करती रही है। हमारे यह सांस्कृतिक मूल्य इस पतन की अवस्था में भी सुरक्षित रहे। मुस्लिम काल में हिंदू समाज के कई संप्रदायों ने महिलाओं को पर्दे में रखना शुरू कर दिया। यह पर्दा प्रथा मुस्लिम समाज के आतंक से बचने के लिए जारी की गयी जो आज तक कई स्थानों पर एक रूढि. बनकर समाज के गले की फांसी बनी हुई है। अंग्रेजों के काल में भी यह परंपरा यथावत बनी रही अन्यथा प्राचीन भारतीय समाज में पर्दा प्रथा नहीं थी। आज समय करवट ले रहा है। दमन, दलन और उत्पीडऩ से मुक्त होकर नारी बाहर आ रही है। यह प्रसन्नता की बात है, किंतु फिर भी कुछ प्रश्न खड़े हैं। नारी के सम्मान, मर्यादा, गरिमाऔर नारी सुलभ कुछ गुणों को बचाए रखने को लेकर। हमारे यहां माना जाता है कि नारी की पूजा से देवता प्रसन्न होते हैं। जहां नारी का सम्मान होता है वहां देवताओं का वास होता है। इसका अर्थ नारी की आरती उतारना नहीं है, अपितु इसका अर्थ है नारी सुलभ गुणों-यथा उसकी ममता, उसकी करुणा, उसकी दया, उसकी कोमलता का सम्मान करना। उस के इन गुणों कोअपने जीवन में एक दैवीय देन के रूप में स्वीकार करना।

जो लोग नारी को विषय भोग की वस्तु मानते हैं वो भूल जाते हैं किनारी सबसे पहले मां है, यदि वह मां के रूप में हमें ना मिलती और हम पर अपने उपरोक्त गुणों की वर्षा ना करती तो क्या होता? हम ना होते और ना ही यह संसार होता। तब केवल शून्य होता। उस शून्य को भरने के लिए ईश्वर ने नारी को हमारे लिए सर्वप्रथम मां बनाया। मां अर्थात उसने अपने ही रूप में उसे हमारे लिए बनाया। इसलिए मां को सर्वप्रथम पूजनीय देवी माना गया। मातृदेवो भव का यही अर्थ है। भारतीय नारी के इस मातृ स्वरूप ने ही भारत को इस धारा के विश्वगुरु के रूप में स्थापित किया था। इस समग्र सृष्टि की जननी के स्वरूप को ही भारत में पूजने की परंपरा चली आ रही है। यही सशक्त मातृ सत्ता का प्रमाण है। मातृशक्ति के सहारे ही भारत अपने समय के सभी संकटों से मुक्त होता रहा है।

यदि केवल पांच हजार साल पहले के ही अपने इतिहास पर नजर डालें तो पता चलता है कि कैसे माता कुंती के तप ने पांच पांडवों को महाभारत जैसे भीषण युद्ध का विजेता तक बनाने में अपनी भूमिका निभाई। माता यशोदा के निश्छल प्रेम के साथ ही अनुशासन और मातृ शिक्षा ने कृष्ण को योगेश्वर कृष्ण और महानायक बना दिया। उसी कृष्ण ने पांच हजार साल पहले इस धरती को अन्याय से मुक्त कराकर मानव सभ्यता को गीता की दृष्टि दी। हम उसका पालन न कर सके तो यह हमारा दोष है, कृष्ण का नहीं। कृष्ण के बाद 26 सौ वर्षों तक का इतिहास अज्ञात है, लेकिन उसके बाद महावीर से लेकर बुद्ध तक का इतिहास मातृ सत्ता के सशक्त स्वरुप का ही प्रमाण प्रस्तुत करता है। आदि गुरु भगवान शंकराचार्य के प्रकाश के पीछे भी एक मां की समस्त शक्ति का प्रस्फुटन ही प्रमाणित होता है। माता आर्य अम्बाकीशिक्षाऔर उनकेसंस्कारोनेजगतकोआदिगुरुशंकर प्रदानकिया।

भारत की माताओं की इसी शक्तिशाली परंपरा में चन्द्रगुप्त की माता मोरा, सम्राट अशोक की माता धर्मा (शुभद्रांगी) जैसी अनेकानेक सशक्त नारियों के नाम भी शामिल हैं। मराठा वीर शिवाजी के इतिहास को तो आज सभी जानते हैं। माता जीजाबाई की क्षमता से भला कौन भारतीय होगा जो परिचित न हो।मराठा सम्राट छत्रपति शिवाजी राजे भोसले की माता जीजाबाई का जन्म सिंदेड़ नामक गांव में हुआ था। यह स्थान वर्तमान में महाराष्ट्र के विदर्भ प्रांत में बुलढाणा जिले के मेहकर जनपद के अन्तर्गत आता है। उनके पिता का नाम लुखजी जाधव तथा माता का नाम महालसा बाई था। जीजाबाई का विवाह शाहजी के साथ कम उम्र में ही हो गया था। उन्होंने सदैव अपने पति का राजनीतिक कार्यों में साथ दिया। शाहजी ने तत्कालीन निजामशाही सल्तनत पर मराठा राज्य की स्थापना की कोशिश की थी। लेकिन वे मुगलों और आदिलशाही के संयुक्त बलों से हार गये थे। संधि के अनुसार उनको दक्षिण जाने के लिए मजबूर किया गया था। उस समय शिवाजी की आयु 14 साल थी। अतः वे मां के साथ ही रहे। बड़े बेटे संभाजी अपने पिता के साथ गये। जीजाबाई का पुत्र संभाजी तथा उनके पति शाहजी अफजल खान के साथ एक लड़ाई में मारे गये। शाहजी की मृत्यु होने पर जीजाबाई ने सती होने की कोशिश की, लेकिन शिवाजी ने अपने अनुरोध से उन्हें ऐसा करने से रोक दिया।

वीर माता जीजाबाई छत्रपति शिवाजी की माता होने के साथ-साथ उनकी मित्र, मार्गदर्शक और प्रेरणास्त्रोत भी थीं। उनका

सारा जीवन साहस और त्याग से भरा हुआ था। उन्होंने जीवन भर कठिनाइयों और विपरीत परिस्थितियों को झेलते हुए भी धैर्य नहीं खोया और अपने 'पुत्र 'शिवा' को वे संस्कार दिए, जिनके कारण वह आगे चलकर हिंदू समाज का संरक्षक 'छात्रपति शिवाजी महाराज' बना। जीजाबाई यादव उच्चकुल में उत्पन्न असाधारण प्रतिभाशाली थीं। जीजाबाई जाधव वंश की थी और उनके पिता एक शक्तिशाली सामन्त थे। शिवाजी महाराज के चरित्र पर माता-पिता का बहुत प्रभाव पड़ा। बचपन से ही वे उस युग के वातावरण और घटनाओं को भली प्रकार समझने लगे थे।

इसी क्रम में एक और नाम उभरता है अहिल्याबाई होल्कर का। अहिल्याबाई किसी बड़े भारी राज्य की रानी नहीं थीं, बल्कि एक छोटे भू-भाग पर उनका राज्य कायम था और उनका कार्यक्षेत्र अपेक्षाकृत सीमित था। इसके बावजूद जनकल्याण के लिए उन्होंने जो कुछ किया, वह आश्चर्यचकित करने वाला है। राज्य की सत्ता पर बैठने के पूर्व ही उन्होंने अपने पति व पुत्र सहित अपने सभी परिजनों को खो दिया था। इसके बाद भी प्रजा हितार्थ किए गए उनके जनकल्याण के कार्य प्रशंसनीय हैं। अहिल्याबाई ने अपने राज्य की सीमाओं के बाहर सम्पूर्णभारतकेप्रसिद्ध तीर्थों और स्थानोंमेंमंदिर व घाट बनवाए, कुंओं और बावडिय़ों का निर्माण किया, मार्ग बनवाए, पुराने पथों का मरम्मतीकरण करवाया, भूखों के लिए अन्नसत्र खोले, प्यासों के लिए प्याऊ बिठाए, शास्त्रों के मनन-चिंतन और प्रवचन हेतु मंदिरों में विद्वानों की नियुक्ति की। वे मरते दम तक आत्म प्रतिष्ठा के झूठे मोह का त्याग करके सदा न्याय करने का प्रयत्न करती रहीं।

रानी अहिल्याबाई ने काशी, गया, सोमनाथ, अयोध्या, मथुरा, हरिद्वार, द्वारिका, बद्रीनारायण, रामेश्वर, जगन्नाथ पुरी इत्यादि प्रसिद्ध तीर्थस्थानों पर मंदिर बनवाए और धर्मशालाएं खुलवायीं। कुछ इतिहासकारों ने इन मंदिरों को हिंदू धर्म की बाहरी चौंकियां बतलाया है। कहा जाता है कि रानी अहिल्याबाई भगवान शिव की अनन्य भक्त थीं और एक बार उनके स्वप्न में भगवान शिव आए और उन्हें प्रजा के कल्याण के लिए काशी विश्वनाथ की सुध लेने की सलाह दी। उन्होंने 1777 में विश्व प्रसिद्ध काशी विश्वनाथ मंदिर का निर्माण कराया। शिव की भक्त अहिल्याबाई का सारा जीवन वैराग्य, कर्तव्य पालन और परमार्थ को समर्पित रहा। मुस्लिम आक्रमणकारियों द्वारा तोड़े हुए मंदिरों को देखकर ही उन्होंने सोमनाथ में शिव का मंदिर बनवाया। वे शिवपूजन के बिना मुंह में पानी की एक बूंद नहीं जाने देती थी। मेवाड़ की पन्ना धाय को याद करने की जरूरत है। राज्य की रक्षा के लिए बेटे का बलिदान बहुत ही साहस की बात है।

गोंड की महारानी दुर्गावती ने 1564 में मुगल सम्राट अकबर के सेनापति आसफ खान से लडक़र अपनी जान गंवाने से पहले पंद्रह साल तक शासन किया था। भक्ति आंदोलन ने महिलाओं की बेहतर स्थिति को वापस हासिल करने की कोशिश की और प्रभुत्व के स्वरूपों पर सवाल उठाया>एक महिला संत-कवयित्री मीराबाई भक्ति आंदोलन के सबसे महत्वपूर्ण चेहरों में से एक थीं। इस अवधि की कुछ अन्य संत-कवयित्रियों में अक्का महादेवी, रामी जानाबाई और लाल देद शामिल हैं। हिंदुत्व के अंदर महानुभाव, वरकारी और कई अन्य जैसे भक्ति संप्रदाय में पुरुषों और महिलाओं के बीच सामाजिक न्याय और समानता की खुले तौर पर वकालत करने वाले प्रमुख आंदोलन थे।

कर्नाटक में कित्तूर रियासत की रानी, कित्तूर चेन्नम्मा ने समाप्ति के सिद्धांत (डाक्ट्रिनऑफलैप्स) की प्रतिक्रिया मेंअंग्रेजों के खिलाफ सशस्त्र विद्रोह का नेतृत्व किया। तटीय कर्नाटक की महारानी अब्बक्का रानी ने 16वीं सदी में हमलावर यूरोपीय सेनाओं, उल्लेखनीय रूप से पुर्तगाली सेना के खिलाफ सुरक्षा का नेतृत्व किया। झांसी की महारानी रानी लक्ष्मीबाई ने अंग्रेजों के खिलाफ 1857 के भारतीय विद्रोह का झंडा बुलंद किया। आज उन्हें सर्वत्र एक राष्ट्रीय नायिका के रूप में माना जाता है।

ये कुछ उदाहरण मात्र हैं जो भारत की मातृ शक्ति की क्षमता और उसकी भूमिका को रेखांकित करते है। तात्पर्य स्पष्ट है। बिना सशक्त माता के कोई राष्ट्र समर्थ नहीं बन सकता। यह हमारा सौभाग्य है कि हजारों वर्षों की पराधीनता के बाद भी भारत की माताओं ने समय-समय पर ऐसे संतानें दी हैं जिन्होंने राष्ट्र को गौरव प्रदान किया। हमारी मातृशक्ति ही है जिसके दम पर भारत फिर विश्वगुरु बन सकने की स्थिति में पहुंच रहा है।

सुनो, मुस्कुरा दो ना !

नेहा अग्रवाल 'नेह'

छोटे छोटे बल्ब पूरे लॉन में बिखरे हुए थे ,एक नजर में ऐसा लग रहा था ।।जैसे सारे सितारे जमीन पर आ गये हो ।।।और टिमटिमाते हुए मुस्कुरा रहे हो ।।।।शहर की इस नामी गिरामी महफिल में लोगों का हजूम अपनी मसरूफियत में मसरूफ था ।।।कुछ लोग इतनी शानदार दावत में भी चुन चुन कर गलती निकालने की जद्दोजहद में लगे हुए थे ।।।तो दूसरी तरफ खूबसूरत बालायें अपनी खूबसूरती को कैद करने की कोशिश में हलकान थी ।।।।

वर्मा जी की धर्मपत्नी इस जुगाड़ में थी की थोड़ी गहमागहमी कम हो तो वो झक कर पानीपूरी से इन्साफ कर सके ।।।तो वहीं छोटे बच्चे अपनी तेज निगाहों वाली मम्मा की आँखों में धूल झोंकने में सफल होकर तीसरी बार चॉकलेट आइसक्रीम का लुफ्त उठा रहे थे ।।।।

इन सब के बीच एंकर भी बार बार अपनी कोशिशों में लगा हुआ था ।।।वो अक्सर पार्टी में मौजूद मेहमानों से कुछ सवाल कर रहा था ।।।और सही जवाब मिलने पर मेहमानों को तोहफे देकर अपना फर्ज भी पूरा कर रहा था ।।।

इन खुशियों की बारात के बीच बस एक इन्सान था जो गुमसुम उदास सा था ।।।उसने एकआध बार मुस्कुराने की कोशिश भी की ।।पर होठों ने साथ देने पर साफ इनकार कर दिया ।।।।

तभी फिजां में एंकर की आवाज गूंजी ।।।।

' और अब आप सबके लिए आज का आखिरी सवाल वैसे मैं आप सबको बता दूँ यह सवाल आखिरी जरूर है पर इसका गिफ्ट सबसे बड़ा और अनोखा है ...

तो सवाल यह है की यहाँ मौजूद लोगों में से किसके बटुए में अपनी धर्मपत्नी का फोटो है ...'

एंकर के इतना कहते ही माहौल में एक चुप्पी सी पसर गयी ...

लोग आपस में कानाफूसी कर रहे थे आजकल कौन तस्वीर रखता है सबकुछ तो फोन में ही होता है ...

तभी लगभग सत्तर साल के एक बुजुर्ग का जोश देखने लायक था ...

वो तेज कदमों से चलते हुए स्टेज के पास आये और बोले...

' यह देखिये मेरा बटुआ कितनी खूबसूरत तस्वीर है इसमें हमारी धर्मपत्नी जी की ...'

एंकर ने उस बुजुर्ग के हाथ से तस्वीर लेते हुए बुलंद आवाज में कहा ...

' आपके प्यार को हमारा सलाम सर जी ...। इस उम्र में भी यह जज्बा सच में आपकी शरीके हयात बहुत किस्मत वाली है प्लीज उन्हें बुलाये ना हम सब भी उस भाग्यशाली इन्सान ने मिलना चाहेगें...'

कोने की कुर्सी पर बहुत देर से उदास बैठी रमा जी के चेहरे पर ना चाहते हुए भी एक मुस्कुराहट आ ही गयी जिसे जल्द ही काबू कर वो हौले हौले कदम बढ़ाकर स्टेज की तरफ बढ़ गयी ...

उन्हे आता देखकर शर्मा जी भी अपनी उम्र को भूल बिल्कुल नौजवानों की तरह लपक कर रमा जी के पास पहुंचे ...और उनका हाथ थामते हुए सरगोशी की ...

' अब तो मुस्कुरा दो ना प्यारी रमा जब से महफिल में आयी हो तबसे नाराज हो ...अच्छा कहो तो सबके सामने कान पकड़ कर माफी माँग लूँ पर तुम भी तो इस उमर में बच्चों जैसी जिद पर अड़ जाती हो कल ही मना करे थे ना डॉक्टर साहब की ज्यादा मीठा आपके लिए जहर है फिर मैं कैसे तुम्हें गुलाब जामुन खाने देता ...

अच्छा पक्का वादा इस जीत की खुशी में मैं तुम्हें गुलाब जामुन जरूर खिला दूँगा ...पर आधा ...आधे पर मेरा हक है ना ...'

और रमा जी इस बात पर खिलखिला दी ...

स्टेज पर गिफ्ट लेते वक्त मुस्कुराहट ने रमा जी पर कब्जा कर लिया था ... उदासी अब एक कोने में अपनी हार का मातम मना रही थी ...

●●●

लघु कथा

परिवार

डिजेन्द्र कुर्रे"कोहिनूर"

एक गांव में सोनुराम नाम का वृद्ध रहता था।उसके नौ बेटी और चार बेटा रहता है ।परिवार बहुत बड़ा था। परिवार का लालन पालन खेती मजदूरी करके परिवार का भरण पोषण करता था। सोनू राम की पत्नी बहुत परेशान रहती थी । परिवार बड़ा होने के कारण दिनोंदिन उनके बाल बच्चे झगड़ते रहते थे।सुबह होता कि चाय रोटी के लिए झगड़ते स्कूल जाने समय पुस्तक कापी के लिए झगड़ते कहीं न कहीं बच्चे के लिए कई बहाना मिल जाते और एक दूसरे झगड़ते रहते । मां काफी परेशान रहती थी फिर भी मां की ममता सभी बच्चों को लाड प्यार देने के लिए कोई कसर नहीं छोड़ती ।एक दिन सोनू का बेटा रंगा और बिल्ला कपड़ा के लिए दो-दो हाथ हाथापाई हो गए।रंगा का शर्ट बिल्ला पहन लिया था ।बिल्ला ने उससे गुस्से में इसका शर्ट फाड़ दिया जब उसका पिताजी काम करके घर आया देखा बिल्ला को खूब डांट फटकार पड़ी और उसके लिए कपड़ा भी नहीं लिया एक-एक पैसे कमा कर इकट्ठा करता लेकिन परिवार चलाना इतना आसान नहीं था।आटे दाल भाव का मालूम सोनू राम को परिवार पालन-पोषण से ही पता चल गया ।एक दिन अचानक रंगा का बहुत तबीयत खराब हुआ उसकी मां उसकी हालत देखकर जोर जोर से रो रही थी पैसे के लिए उस घर उस घर दर-दर भटक रही थी अंत में पैसे के अभाव में उसका बेटा दम तोड़ दिया।सोनू राम भी सोचने लगा इतना ज्यादा बच्चा परिवार चलाना बहुत कठिन है मन मन खुद कर रोने लगा।बहुत पश्चाताप किया। अंत मे उसके जीवन में एक ऐसा बदलाव आया कि सोनू राम को गांव में सरपंच बनने का अवसर मिला ।तब सरपंच गांव का मुखिया होने के नाते पूरे गांव को चलाया विकास कर गांव को तरक्की की ओर ले गया। गांव में एक ऐसे बदलाव लाया की हम दो हमारे दो की योजना को पहल कर लोगो को जागरूक किया। उस पंचायत में गांव में किसी भी व्यक्ति का 2 बच्चे से अधिक बच्चा पैदा नही किया।लोगों को समझाते थे। अपनी व्यथा को लोगों सुनाते थे ।फिर उस गांव में खुशहाली आ गया लोग सोचने लगे जनसंख्या बढ़ाने से कोई लाभ नहीं है इसलिए छोटा परिवार सुखी परिवार ही सर्वोत्तम है।

[पिपरभावना, बलौदाबाजार(छ.ग.), मो. 8120587822]

●●●

संस्कृति पर्व के सहयोगियों का सम्मान

संस्कृति पर्व को प्रकाशित होते दो वर्ष पूरे होने वाले हैं। यह दूसरे वर्ष का ११वान अंक है। इस अंक के प्रकाशन के साथ ही एक विशेष उपलब्धि संस्कृति पर्व के साथ जुडी है। संस्कृति पर्व के दो वरिष्ठ सहयोगियों को भारतीय साहित्य में महत्वपूर्ण उपलब्धियां प्राप्त हुई हैं। यह पत्रिका के लिए गर्व की बात है। **संपादक**

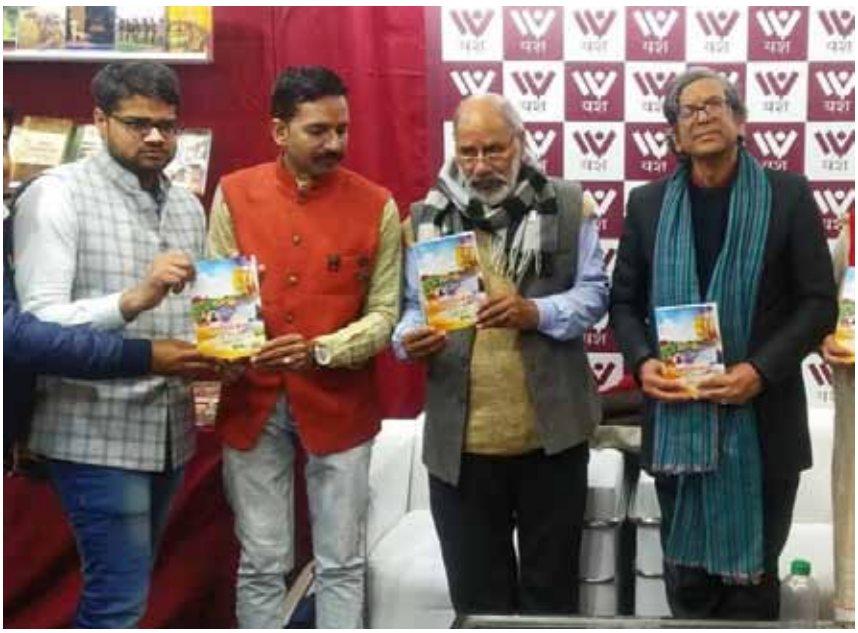

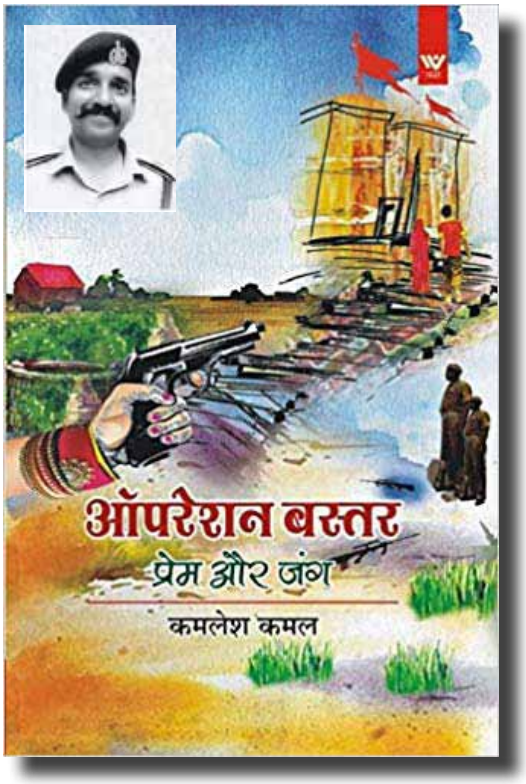

कमलेश कमल

संस्कृति पर्व पत्रिका के सह संपादक एवं भारत संस्कृति न्यास के न्यासी कमलेश कमल को भाषा-विज्ञान के क्षेत्र में अभूतपूर्व योगदान के लिए दिल्ली के विश्व पुस्तक मेला में सम्मानित किया गया। विदित हो कि कमलेश पिछले 15 वर्षों से भाषा-विज्ञान के क्षेत्र में कार्य कर रहे हैं एवं शब्दों की व्युत्पत्ति एवं मानक प्रयोग पर अहर्निश लिखते रहे हैं।

विश्व पुस्तक मेला-2020 में साहित्य अकादमी से सम्मानित 95 वर्षीय रामदरश मिश्र के साथ हमारे युवा सह संपादक का सम्मान इसलिए भी विशिष्ट है कि इन्होंने पुलिस की नौकरी के साथ-साथ न केवल भाषा-विज्ञान में श्लाघनीय अवदान दिया है, अपितु 11 लाख से अधिक लोगों के हस्ताक्षर हिंदी में करवाने के लिए इनकी संस्था मातृभाषा उन्नयन संस्थान को इसी विश्व पुस्तक मेला में वर्ड बुक ऑफ रिकॉर्ड, लंदन द्वारा भी प्रमाण पत्र सौंपा गया।

पत्रिका के लिए यह भी गौरव का क्षण है कि कमलेश कमल का सद्यः प्रकाशित उपन्यास 'ऑपरेशन बस्तर : प्रेम और जंग' हिंदी का बेस्टसेलर नम्बर-1 बना। ऐसे समय में जब पुस्तकों पर संकट की बात की जा रही है, इस पुस्तक के प्रति क्रेज इतना है कि प्रीबुकिंग काल से ही कई बार आउट ऑफ स्टॉक हो चुकी है।

अनिता अग्रवाल

पत्रिका की सह संपादक और प्रख्यात लेखिका अनिता अग्रवाल को उत्तरप्रदेश के हिंदी संस्थान ने उनकी सांस्कृतिक कृति बारह मासा के लिए संस्कृति खंड का सम्मान प्रदान किया है। यह सम्मान उन्हें 30 दिसम्बर 2019 को लखनऊ में मुख्यमंत्री योगी आदित्यनाथ की उपस्थिति में प्रदान किया गया। अनिता अग्रवाल एक बहुमुखी प्रतिभा की रचनाकार हैं। उनकी संवेदनशील रचनाधर्मिता उन्हें अन्य लेखिकाओं से थोड़ा अलग करती है। अनीता अग्रवाल की रचनायात्रा बहुत लम्बी है। उन्होंने कई पत्रिकाओं के संपादन में अपना बहुत ही सक्रिय योगदान किया है। मूलतः विधि की अध्येता रही अनीता अग्रवाल को छात्र जीवन से ही साहित्य से विशेष जुड़ाव रहा है। विधि की पढ़ाई के दौरान ही उनका पहला काव्य संग्रह प्रकाशित हुआ था। उसके बाद से वह निरंतर लेखन में सक्रिय हैं।

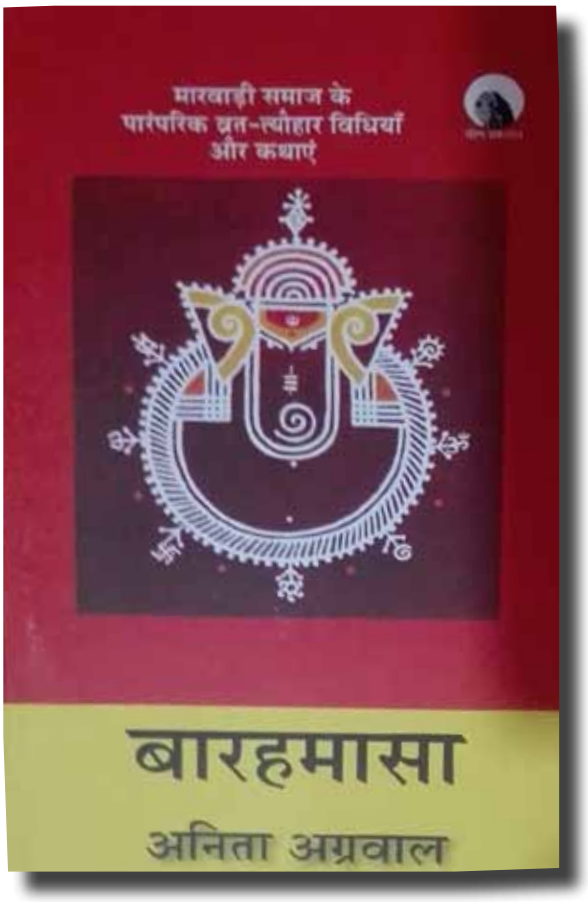

बेटियाँ भार नहीं होतीं

बेटियाँ भार नहीं होतीं
वे होती हैं
स्वच्छ जल की भाँति
स्वच्छ वायु की भाँति
स्वच्छ अग्नि की भाँति
वे बहती हैं
शीतलता देती हैं
स्वच्छ जल की धार सी
स्वच्छ बयार सी
वे जलती हैं
ऊर्जा देती हैं
यज्ञ की शिखा सी
ये तो तुम हो
और समाज है
जो अवसादों से
अपने विचार
और व्यवहार के
अपशिष्ट से
उस जल-प्रवाह को
दूषित करता है
उस वायु को
प्रदूषित करता है
अपना भार
अपना क्षरण
लादकर
अवसादों से भरकर
उस जल और
वायु को
अवसादी बनाता है
भार बनाता है।
बेटियाँ भार नहीं होतीं
यह समाज है जो
अनुचित ईंधन
झोंककर
वायु का पथ रोककर
अग्नि को
दूषित करता है
और प्रज्वलित
शिखा को
धुँआ बनने पर
विवश करता है
फिर उसके
अस्तित्व पर प्रश्न करता है।
फिर भी।।।
बेटियाँ
सभी अवसादों को ढोकर
तुम्हारे अपक्षय
और अपरदन को
स्वयं पर लादकर
उसे आत्मसात् कर
जल सी वायु सी
मंथर ही सही
बहती रहती हैं
अपने शक्ति भर
संजीवनी बन
जीवन गढ़ती
रहती हैं।
और जब अवसादों का भार
उनसे ढोया नहीं जाता
तब भी वे
हार नहीं मानतीं
रूपांतरित शैल सी
रूपांतरित होकर
फिर आग्नेय बन जाती हैं
और अटल
अखंड भूखंड सी
खड़ी हो जाती हैं
जिन्हें कोई भूकंप
कोई सुनामी
डिगा नहीं सकती
डरा नहीं सकती।
वे अवसादों का संघनन कर
बरस पड़ती हैं
और फिर
अवसाद मुक्त हो उठती हैं।
धुआँ बनने पर भी
आग को गर्भ में छुपाये
अवसर मिलते ही
धधक पड़ती हैं
हर परिस्थिति में
चिनगी बचाये रहती हैं
आग जलाये रहती हैं
ज्वाला बनने के लिए।
आग बनने के लिए।
बेटियाँ भार नहीं होतीं
वे नहीं भूलतीं
अपना स्वभाव
संरक्षण का
संवर्धन का
और सृजन का।
हर परिस्थिति में वे
अपनी मौलिकता
बचाये रहती हैं
भस्म होकर भी
स्वधा का मंत्र गाती हैं
बेटियाँ भार नहीं होतीं
वे बिना प्रतिकार
तुम्हारा
भार ढोती हैं
कि संभवतः कभी
तुम्हारी आँख खुले
और तुम अपनी करनी को
समझ पाओ
सम्हल जाओ।

डॉ० ममता त्रिपाठी

RIVER OF CONSCIOUSNESS

In the deep forest of silent mind
amidst the cool serene aura
there flows a river of consciousness
making the sweet rhythmic music of breaths
make us learn to flow in the barren land of our life
to flow amidst the stones of suffering
and tell us with an echo life is flowing life is offering

==========

HAPPINESS IS WITHIN YOU

Why you run here and there in search of it
It lies within you
Don`t be a musk to smell it here and there
it is in your navel
do not make it a chain of damsel
to search here and there
Happiness is within you

==========

LEAD ME TOWARDS LIGHT

When the darkness of self engulfs
bitterness spreads like virus
let the moon of peace shine amidst stars
always crave for selfless fragrant rose
which fill the firmamemt with selfless sacrifice
lets lit the lamp of love
lead me towards light

==========

CHARIOT OF TIME

Suddenly the golden chariot of time stopped
All plans of skyscrappers rolled into dust
Death dazzled you with galore
you just watched at the sea shore
swapped all of your life-earnings
You just become homeless prisoner
You never lit the lamp of selfless service
in the dark tunnel of mammonism

==========

Dr. RAM SHARMA

संस्कृति पर्व
Sanskriti Parva

सदस्यता फॉर्म - SUBSCRIPTION FORM

नाम
NAME _____

पिता/पति
FATHER/HUSBAND _____

पत्रिका के लिए स्थाई डाक का पता
PERMANENT POSTAL ADDRESS FOR MAGAZINE _____

_____

_____

पिन कोड
PIN CODE _____

ई-मेल
MAIL ID _____

मोबाइल नं०
MOBILE NO. _____

सदस्यता का प्रकार एवं शुल्क / TYPE OF MEMBERSHIP & FEE

वार्षिक/ ANNUAL	500/-	
त्रैवार्षिक/ THREE YEARS	1400/-	
पंच वार्षिक/ FIVE YEARS	2200/-	
आजीवन व्यक्ति / LIFETIME PERSON	11000/-	
आजीवन संस्था / LIFETIME INSTITUTION	21000/-	

शुल्क का भुगतान नगद , ड्राफ्ट या चेक से किया जा सकता है। ऑनलाइन भुगतान पत्रिका के खाते में किया जा सकता है। चेक या ड्राफ्ट 'संस्कृतिपर्व प्रकाशन' के नाम होना चाहिए।

Account Detail

SANSKRITIPARV PRAKASHAN, BANK : HDFC, A/c NO. : 50200035311373 ,IFSC : HDFC0000594

भारत संस्कृति न्यास

उद्देश्य

- सनातन संस्कृति के संरक्षण, संवर्धन और प्रसार के लिए सतत प्रयत्नशील
- राष्ट्रीय संस्कृति विश्वविद्यालय की स्थापना के लिए प्रयासरत
- प्राथमिक से स्नातक तक पाठ्यक्रम में संस्कृति शिक्षा को अनिवार्य रूप से शामिल कराने का प्रयास
- राष्ट्रीय संस्कृति आयोग का गठन एवं राष्ट्रीय संस्कृति दिवस के निर्धारण के लिए प्रयास

पत्र व्यवहार

बी–64, आवास विकास कालोनी, सूरजकुंड गोरखपुर–273001

1–454 वास्तुखण्ड, गोमती नगर लखनऊ–226010

✆ +91:–9450887186, +91:–9450887187

Follow us

पंजीकृत कार्यालय

बी–38, डिफेन्स कॉलोनी, नई दिल्ली–110024

Contact : 011-24337573

bharatsanskritinyas@gmail.com

Website - www.bharatsanskritinyas.org

गणतंत्र दिवस

की

हार्दिक शुभकामनाएं

वंदे मातरम

रविकान्त तिवारी,

भाजपा नेता,

विधानसभा- 326,

चौरी-चौरा (गोरखपुर)

फरवरी विशेष अंक

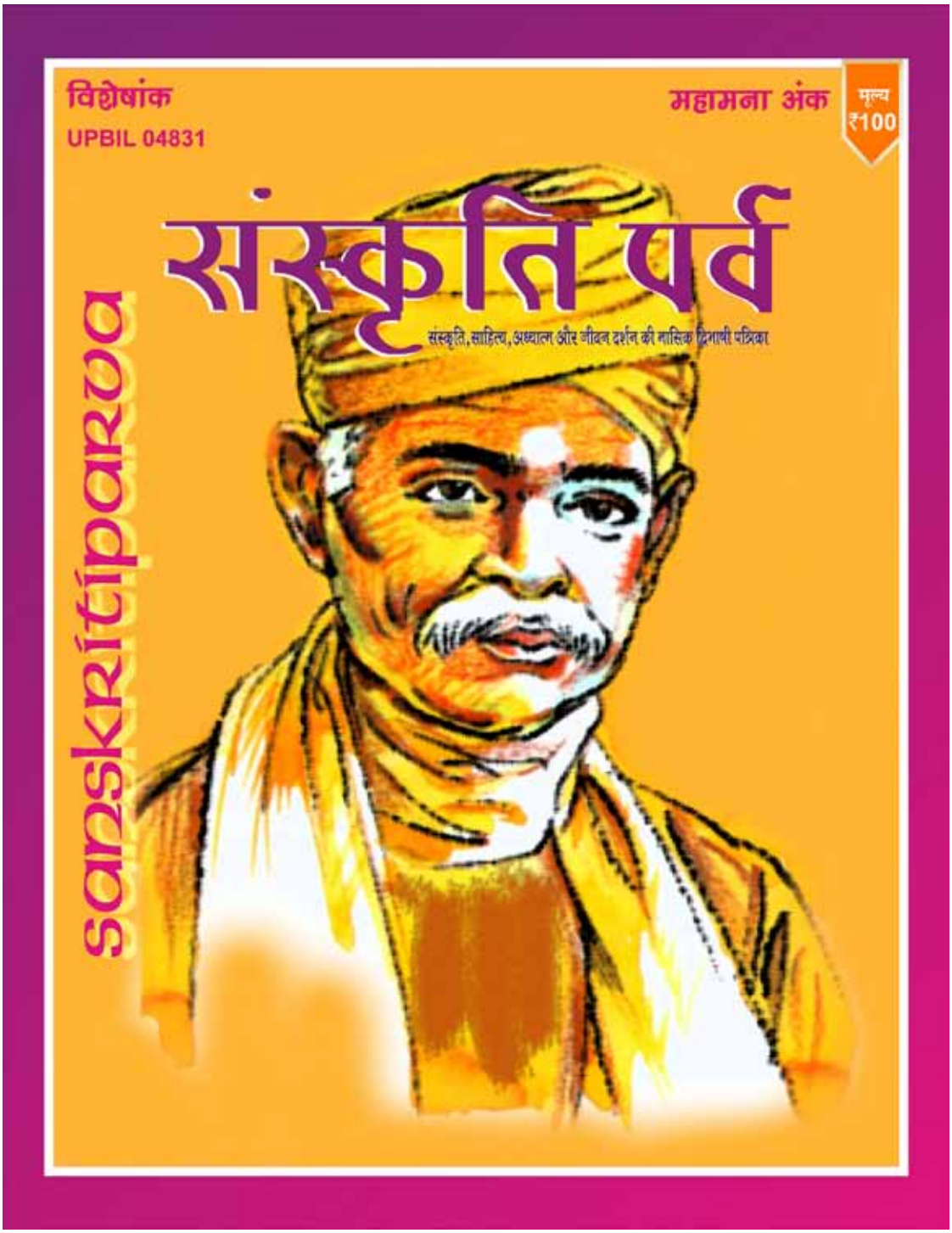

महामना मदन मोहन मालवीय के जीवन में वर्ष 1946 कुछ ज्यादा ही कष्टदायी हो गया। उसी वर्ष उनका निधन हुआ। उनके निधन तथा देश की तत्कालीन परिस्थितियों से अत्यंत क्षुब्ध होकर भाई जी हनुमान प्रसाद पोद्दार ने कल्याण का एक विशेष अंक अक्टूबर 1946 में प्रकाशित किया। इस अंक को भारत सरकार ने प्रसारित नहीं होने दिया क्योंकि इसमें बहुत कुछ ऐसा था जो देश के सामने आता तो हालात परिवर्तित हो सकते थे। तत्कालीन भारत सरकार द्वारा प्रतिबंधित कल्याण का वह अंक संस्कृति पर्व के पास है। महामना पर केन्द्रित उसी अंक की सामग्री के साथ संस्कृति पर्व का फरवरी 2020 का विशेष अंक प्रकाशित किया जा रहा है। सम्पादक

एच1एन1 इनफ्लूएंजा
स्वाइन फ्लू से बचें

एच1 एन1 इनफ्लूएंजा (स्वाइन फ्लू) एक संक्रामक रोग है। प्रारम्भिक अवस्था में जाँच तथा उपचार से इस रोग के गंभीर परिणामों को रोका जा सकता है।

रोग फैलने के कारण

- संक्रमित व्यक्ति के सम्पर्क से
- खांसी एवं छींक के साथ निकले संक्रामक कणों द्वारा साँस के माध्यम से
- हाथों तथा वस्तुओं पर उपस्थित संक्रामक कणों के संपर्क में आने से

रोग के लक्षण

बुखार | खाँसी | गले में दर्द | शरीर में दर्द | साँस लेने में कठिनाई

बचाव एवं रोकथाम के उपाय

- नाक और मुँह को ढक कर रखें।
- साबुन से अपने हाथों को नियमित रूप से धोएं।
- पर्याप्त मात्रा में तरल पदार्थ का सेवन करें।
- रोग से संक्रमित मरीजों को स्वस्थ व्यक्तियों से अलग रखें।
- आँख, नाक तथा मुँह को छूने से बचें।
- चिकित्सक की सलाह के बिना औषधि का सेवन न करें।
- रूमाल या टिशू पेपर का पुनः प्रयोग न करें।
- भीड़–भाड़ वाले स्थानों पर जाने से बचें।
- हाथ मिलाने से बचें।

एच1 एन1 इनफ्लूएंजा (स्वाइन फ्लू) का उपचार सभी जिला चिकित्सालयों में निःशुल्क उपलब्ध है।

https://www.facebook.com/NationalHealthMission.UP https://twitter.com/nhm_up www.upnhmiecbcc.in

चिकित्सा, स्वास्थ्य एवं परिवार कल्याण विभाग, उत्तर प्रदेश – टोल फ्री नं0– **1800-180-5145**

राष्ट्रीय स्वास्थ्य मिशन, उत्तर प्रदेश – टोल फ्री नं0–**1800-180-1900**